UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186108

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—391—29-4-72—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 D99N Accession No. G.H.4374

Author द्विवेदी

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

नव-निधि

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

'गीत-गौरव', 'सुकवि-सरोज', 'बुन्देल-वैभव', 'कामरूप - कथा - महाकाव्य' 'ईसुरी - प्रकाश' 'महारानी-झाँसी वीरांगना लक्ष्मीबाई'; 'मानस-मथन' 'शंकर-शतदल' आदि ग्रंथों के प्रणेता

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

प्रकाशक :
चतुर्वेदी प्रकाशन समिति
कमतरी, आगरा (उ. प्र.)
शाखा : १४–७–३, बेगमबाज़ार
हैदराबाद–दक्षिण (आ. प्र.)

प्रथम सस्करण १०००

मूल्य : ३.०० रु.

प्राप्ति-स्थान
भारतीय पुस्तक भण्डार
बेगमबाज़ार, हैदराबाद–दक्षिण (आ. प्र.)

मुद्रक :
कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस
बेगमबाज़ार, हैदराबाद

राष्ट्र-पिता विश्व-वंद्य-बापू

की

पुण्य स्मृति में

सश्रद्धा समर्पित

—'शंकर'

नव-निधि

'मानस', 'गीता-ज्ञान' गुरु,
छंद-शास्त्र - कवि - कर्म;
जन-जन हित प्रगटे परम,
जग - जन - जीवन - धर्म ।

मानव-मानव मित्र हों,
करें विश्व - उत्कर्ष;
विश्व-शान्ति सुस्थिर रहे,
है 'नव-निधि'—निष्कर्ष ।

—'शंकर'

विषय-सूची

लेखक का रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	१
निवेदन	ग्रन्थकार द्वारा	१०
भूमिका	श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंह	१४

खण्ड	१ मंगलाचरण	...	१
,,	२ गीता-ज्ञान गंगा	...	१५
,,	३ बापू-जीवन-दर्शन	...	२८
,,	४ विनोबा-जीवन-दर्शन	..	४०
,,	५ भावना-भूषित-भारतवर्ष	...	४८
,,	६ प्राचीन पावन पर्व	...	५९
,,	७ षट ऋतु वर्णन	...	७४
,,	८ नव रस	...	९४
,,	९ अलंकार-अभिज्ञान	...	१२५

बन्धुवर गौरीशंकर द्विवेदी

"चौबे जी, यहाँ की 'परिषद्' मे अगर कोई आदमी काम करने वाला है, तो वे द्विवेदी जी है। डाकखाने में सात-आठ घंटे पिसने के बाद भी वे रात के ग्यारह-ग्यारह बजे तक कलम घिसा करते हैं। द्विवेदी जी ही 'परिषद्' के प्राण है।"

श्री ठाकुर सज्जनसिंह जी ने यह बात सन् १९३७ में हमें श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद् का सभापतित्व सौंपते हुए कही थी और इसे हम ने अक्षरशः सत्य पाया। यद्यपि द्विवेदी जी से हमारा साक्षात् परिचय दो वर्ष पूर्व हो चुका था और उनके शुभ नाम तथा काम से तो हम बहुत पहले से परिचित थे, (सन् १ २८ में स्व. कृष्ण बल्देव वर्मा ने उनके बारे मे हम से कहा था) तथापि निकट सम्पर्क मे आने का अवसर तब तक हमे नहीं मिला था।

परिश्रम-शीलता तथा व्यवस्था-प्रेम द्विवेदी जी के विशेष गुण है और वक्त पर काम निपटा देना तो मानो उन्ही के हिस्से मे आया है।

डाक-विभाग की सेवा करते हुए उन मे इन गुणों का विकास हुआ है अथवा विद्यार्थी-जीवन में ही उन में ये गुण विद्यमान थे, यह हम नही जानते, पर डाक-विभाग और साहित्य-विभाग जैसे परस्पर विरोधी-घोड़ों पर सवारी गाँठने का जो कठिन-प्रयोग उन्होने कर दिखलाया है वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। इस विषय में 'हमारी एडवर्ड-तिलक-यात्रा,' 'चीन में तेरह मास' और 'रूस-जापान-युद्ध' के लेखक स्व. ठाकुर गदाधर सिंह ही उनके पूर्वज माने जा सकते है।

द्विवेदी जी गत ३० वर्ष से साहित्य-सेवा करते आ रहे है। उनकी रचनाओं के नाम निम्नलिखित है :—

१.	शिव ताण्डव-स्त्रोत	सन् १९१८
२.	पद्य-प्रभाकर (सावित्री-सत्यवान)	१९२०
३.	गीता का पद्यानुवाद (प्रथम सस्करण)	१९२१
४.	रामायण के कुछ उपदेश	१९२१
५.	सुकवि-सरोज (प्रथम भाग)	१९२७
६.	सुकवि-सरोज (द्वितीय भाग)	१९३३
७.	बुन्देल-वैभव (प्रथम भाग)	१९३४
८.	बुन्देल-वैभव (द्वितीय भाग)	१९३६
९.	गीता-गौरव (द्वितीय सस्करण)	१९३५

अप्रकाशित

१.	हरिसेवक-ग्रथावली (दो भाग)	१९३८
२.	चन्देरी-चन्द्रिका	१९३८
३.	सुकवि-सरोज (तीन भाग)	१९३०
४.	बुन्देल-वैभव (पाँच भाग)	१९३५–१९३९
५.	शकर-शतदल (कविता)	१९४७
६.	ईसुरी-प्रकाश	१९४३

यद्यपि द्विवेदी जी का मुख्य कार्य अन्वेषण, संग्रह तथा सम्पादन से सम्बन्ध रखता है और प्रतिभाशाली लेखको या कवियों में उनकी गणना नहीं की जा सकती; (हाँ उनकी किसी-किसी कविता मे प्रतिभा की कली अवश्य प्रस्फुटित हुई है, शायद इस बात का प्रमाण देने के लिए कि डाक-विभागीय रेगिस्तान में भी कमल खिल सकते है) तथापि अपने अत्यन्त व्यस्त डाक-विभागीय-जीवन में उन्होंने जो कुछ कर दिखाया है, वह आश्चर्यजनक है।

द्विवेदी जी का सब से महत्वपूर्ण कार्य है अपने जनपद बुन्देलखण्ड की सेवा। इस विषय में वे स्वर्गीय कृष्ण बल्देवजी वर्मा की मानस-सन्तान तथा बड़े भैया (श्री वृन्दावनलाल वर्मा) के अनुज है; यद्यपि इस प्रान्त की विविध चर्चा द्विवेदी जी ने इन दोनों से कहीं अधिक की है।

स्वर्गीय कृष्णबल्देव जी वर्मा ने द्विवेदी जी से २०-२१ वर्ष पूर्व ही बुन्देलखण्ड की ओर हिन्दी-जनता का ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था और वे प्राचीन परम्परानुसार द्विवेदी जी को पूज्य भी मानते थे। उसका कारण यह था कि द्विवेदीजी का विवाह महाकवि केशव के वंशजो के घर में हुआ है और वर्मा जी केशव के महान् भक्त थे।

विन्ध्य प्रान्त-निर्माण के आन्दोलनकर्त्ता इस बात को भूल जाते है कि जिस साहित्यिक तथा सास्कृतिक भित्ति पर वे अपने स्वप्न को साकार रूप देना चाहते है, उसकी प्रारम्भिक-तैयारी के लिए वे इस त्रिमूर्ति के ऋणी है—सर्वश्री कृष्णबल्देव, वृन्दावनलाल और गौरीशकर।

राजनैतिक क्षेत्र मे कृतज्ञता नाम की कोई चिड़िया है भी या नहीं, और वर्तमान विन्ध्य-प्रदेशीय लीडर द्विवेदीजी की कुछ भी क़द्र करते है या बिल्कुल उपेक्षा ही, इन प्रश्नों से द्विवेजी उद्विग्न नही होते। जाड़े-बरसात, गर्मी-सर्दी, हारी-बीमारी में जिस प्रकार डाकिया अपनी चिट्ठी बाँटता फिरता है, द्विवेदीजी "बुन्देल-वैभव" रूपी साहित्यमृत को वितरण करते रहते है और अपने प्रान्त के साहित्यिक-जीवन को विकसित करते रहते है।

न जाने उन्हें कैसे यह भ्रम हो गया है कि वे उम्र में मुझ से बड़े हैं, (शायद उनका तर्क यह है कि उनका जन्म संवत् ५३ है और मेरा ४९, और ५३ आख़िर ४९ से ज्यादा ही है। पर इसी भ्रमात्मक-

धारणा का एक दुष्परिणाम हुआ है कि उनके प्रत्येक पत्र में मेरे लिए हुक्मनामे लिखे आते हैं कि यह काम करो, वह काम करो। कभी वे हम से जवाब-तलब करते है तो कभी हमें धमकी देते हैं। मिलने पर उनका पहला प्रेम-पूर्ण प्रहार यही होता है—"चौबेजी तुम मे Power of Despatch नहीं, काम निपटाना नही जानते" गोया हम भी कोई डिस्पैच क्लर्क हों।

इस प्रसग में हमें एक घटना याद आ रही है। दिल्ली मे चार व्यक्ति—स्व. कविवर रत्नाकर जी, स्व. प. पद्मसिंह जी शर्मा, प. उदित मिश्र और इन पक्तियों का लेखक—जैन-मेला देखने के लिए निकले।

प. पद्मसिहजी शर्मा बड़ी तेज़ी से चलते थे और रत्नाकर जी बहुत धीरे-धीरे। शर्माजी ने कहा—"रत्नाकर जी, ज़रा तेज चाल से चलिए, क्या धीरे-धीरे चल रहे है" रत्नाकर जी ने उत्तर दिया "अरे भाई! मेला देखने आये है, मन की मौज में चलते है—हम क्या कोई डाक के हरकारा हैं।"

द्विवेदी जी ने हमें डाक का हरकारा ही समझ लिया है। कौन उन्हें समझाए कि साहित्य क्षेत्र और डाक-विभाग अलग-अलग डिपार्टमेंट है।

अब ज़रा "साहित्यिक—सुपरिटेंडेट" शकर जी के आर्डर सुन लीजिए। ये उनके पत्रों से, जो समय-समय पर मुझे भेजते रहे है—लिए गये हैं :—

१. पं. शुकदेव बिहारी मिश्र जी की सेवा में एक पत्र भेज दीजिए जिस से कि वे कालपी के अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर ले। 'मधुकर' में इस विषय पर ज़ोरदार टिप्पणी भी लिखिए।

(२–९–४३ के पत्र में)

२. क्षेत्र काफी तैयार कर लेने पर ही इस बार 'बुन्देलखण्ड-साहित्य-सम्मेलन' क्रिया जाय, जिससे वह फिर खिलवाड़ हो कर न रह जाए। पहले से ही सब संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को सूचित कर दीजिए। गत वर्ष की कार्यकारिणी के सदस्यों की नामावली आपके पास है ही। १३–३–४३

३. 'बुन्देलखण्ड-साहित्य-मण्डल' की आयोजना को भली प्रकार देख कर अपनी सम्मति के साथ शीघ्र ही लौटाइए। एक सप्ताह के भीतर ही वह मुझे मिल जाना चाहिए। ६–९–३५

४. "सैनिक" का पद्मसिंह अंक मिला। अब श्री पं. श्रीधर पाठक को लीजिए और उनके विषय मे भी "सैनिक" का विशेषांक निकालिए। ९–८–३६

५. एक सप्ताह के लिए दतिया पधारिये। यहाँ कवि-गोष्ठी के साथ ही साथ रेखा-चित्रो के लिए पर्याप्त म्याटर मिल जाएगा। दतिया के साहित्यिको को एक अर्से से आपने जो वचन दे रखा है, उसे पूरा कीजिए।

६. झाँसी की भारतीय-साहित्य-परिषद का उद्घाटन आपको ही करना है। उपस्थिति नितात वांछनीय है। ६–४–४८

७. अशान्त जी के छन्दो पर सम्मति दीजिये। १६–११–४८

८. जतारा-बल्देवगढ़ इत्यादि मे पुस्तकालय खुळे या नही? शाखा-सभाओं का क्या हुआ? बेतवा के विषय में कितना मैटर मिल गया है? १४–१२–३८

९ आपने इस बार ब्रज-साहित्य-मण्डल के लिए क्या किया? ब्रज में तो इस बार आप प्रायः दो तीन मास रहे। आगरे में भी गोष्ठी की जाय तो अत्युत्तम हो।

१०. पं. भगीरथ जी मिश्र (लखनऊ विश्वविद्यालय) को प्राचीन हिन्दी-साहित्य की खोज के विषय में सुबिधा कर दीजिये।

११. दो तीन वर्ष में आप ने उन आलमारियों मे से किसी एक पर भी पुस्तक क्यों नहीं लिखी ?

१२. ओरछा से ही पुस्तकालयो की स्थापना का श्रीगणेश कीजिये। महरौनी या उसके पास भी पुस्तकालय खुलवाइये।

पोस्टमास्टर श्री द्विवेदी जी ने अपने इस क्षुद्र हरकारे के नाम जो पचासो आर्डर भेजे है, उनमें से केवल एक दर्जन हमने नमूने के तौर पर उद्धृत कर दिये है। इन हुक्मनामों को पढ़ कर हमारे मन में यही भावना उत्पन्न हुई कि द्विवेदी जी को तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी किसी अखिल-भारतीय केन्द्रीय-संस्था का प्रबन्ध-मंत्री होना चाहिए था। पर साहित्यिक-संस्थाओं में इतनी कल्पना-शक्ति कहाँ ? और उस समाज-व्यवस्था के विषय मे क्या कहा जाय, जो ऐसी असाधारण परिश्रम-शीलता तथा प्रबन्ध शक्ति का सदुपयोग 'गट्ट गर गट्ट, गट्ट गर गट्ट' जैसे नीरस व्यापार में करती है। यदि द्विवेदी जी किसी शक्तिशाली साहित्य सस्था के मंत्री होते तो शाखा सभाओ के कार्य-कर्ताओं की नीद तो अवश्य हराम कर देते, पर उसके परिणाम-स्वरूप भिन्न-भिन्न जनपदों में साहित्यिक-जाग्रति ज़रूर आ जाती।

उनकी कार्य-तत्परता देख कर हमारे हृदय में डाक विभाग के प्रति पर्याप्त सम्मान बढ़ गया है और हम इस पक्ष मे हो गए है कि प्रत्येक साहित्य-सेवी को कम से कम पाँच-सात महीने पोस्टल डिपार्टमेंट में अनिवार्य रूप से काम करना चाहिये। यद्यपि हम जानते है कि यह प्रयोग खतरे से खाली नहीं, क्योंकि इसमें कितने ही साहित्य-सेवी बर-खास्त हो जायँगे और हमारे जैसे अव्यवस्थित महानुभावों को तो बड़े घर की हवा भी खानी पड़ेगी। फिर भी जो लोग परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे, वे अपना कार्य व्यवस्थित ढंग पर कर सकेंगे।

वैसे द्विवेदी जी बड़े विनम्र हैं। कड़ी बात उनके मुँह से नहीं निकलती; लेखनी पर भी वे संयम रखना चाहते हैं। उद्विग्न होने के पर्याप्त कारण होने पर भी गुस्सा पी जाते हैं; पर कभी-कभी शंकर जी का रुद्र रूप भी हमें दीख पड़ा है।

अपने १७–८–३२ के पत्र में आपने हमें लिखा था :—"आपको कोई अधिकार नही कि आप साहित्यिको के जीवन सम्बन्धी मसाले को अल्मारी में बन्द कर रखें! वह समय शीघ्र ही आने वाला है, जब जबरदस्ती आपसे वह साहित्य छीन लिया जाएगा और प्रकाशित कर दिया जाएगा। अतएव अभी से चेत जाइये। आप साहित्यिक पूंजीपति है, रखते और सो भी पुराने टाइप के, जो पूँजी को जमीन में गाड़ कर है। हिन्दी-भाषा के प्रति आप अन्याय कर रहे हैं। वर्ष में कम से कम एक गवेषणा पूर्ण ग्रथ आप को अवश्य ही हिन्दी ससार को अर्पित करना चाहिए। यदि इस बार भी आपने हिन्दी जगत् को वंचित रखा, तो उसे अन्य उपाय करने होगे—यह अल्टीमेटम है।"

यहाँ हमें ईमानदारी के साथ अपना यह अपराध स्वीकार करना पडेगा कि इस प्रकार के अनेको अल्टीमेटम मिलने पर भी हमारी गति 'नौ दिन चले अढाई कोम' से अधिक न बढ़ सकी। 'शकर' जी की सेवा में हमें निवेदन करना है कि साहित्यिक प्रमाद बिना ताण्डव के दूर नहीं हो सकता।

एक बात द्विवेदी जी से हमें और भी कहनी है; वह यह है कि उनका जातीय और जनपदीय प्रेम कभी-कभी उनके साहित्यिक-विवेक को बहुत पीछे छोड़ जाता है। हिन्दी का प्रत्येक श्रेष्ठ कवि बुन्देल खण्ड में उत्पन्न हुआ और वह सनाड्य ब्राह्मण था, यह बात यदि सत्य भी हो तो भी हम मानने को तैयार नहीं। अपने सजातीय चौबे बिहारीलाल को सनाढ्य बनते देख कर हमारा अहिंसात्मक खून भी खौलने लगता है।

द्विवेदी जी ठेठ जनपदीय व्यक्ति हैं। बुन्देलखण्ड के पशु-पक्षी, नदी-नद सरोवर, साहित्य, पुरातत्व, गायक, पहलवान, कवि-लेखक इत्यादि सभी के प्रति उनके हृदय में प्रेम है। कभी वे रुस्तमेहिन्द गामा का स्केच लिखते हैं तो कभी माता वेत्रवती के जीवन चरित्र के लिए मसाला इकट्ठा करते हैं। कभी स्वर्गीय मुंशी अजमेरी जी के लिये अश्रु बहाते हैं तो कभी कविवर घासीराम व्यास की स्मृति-रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं। कभी कविवर ईसुरी के विषय में जाँच-पडताल करने के लिये ग्रामों की खाक छानते फिरते हैं तो कभी किसी नवयुवक लेखक या कवि को प्रोत्साहन देने या दिलाने के लिये चिनित प्रतीत होते है। अभी कुछ दिन पूर्व वे डाक खाने के इन्सपेक्टर नियत हो गये थे। कालपी में उनकी एक दिन की डाक को देख कर हम तो स्तब्ध रह गये। हमने पूछा 'यह कितने दिन का काम है? क्या आप छुट्टी पर थे!

द्विवेदी जी ने उत्तर दिया "यह आज की डाक है और इसे आज ही निपटाना है, नही तो जनाब! जबाब-तलब होगा।" दृढ़ आस्तिक न होते हुए भी हमने उसी समय ईश्वर से प्रार्थना की "हे परमात्मन्! जन्म-जन्मान्तर में हमें डाक-खाने की नौकरी से बचाना"।

द्विवेदी जी ने एक विस्तृत-पत्र में अपने विभागीय-दौरे का वृतात हमें लिख भेजा था। उसे पढ कर हमें यह आशका होने लगी कि यह किसी साहित्यिक-निरीक्षक का भ्रमण-वृत्तात है, या पोस्टल इन्सपेक्टर का! उस दौरे में कवि-सम्मेलन, साहित्यिक-गोष्ठी और साहित्यिक-चर्चा की ही भरमार थी।

'मधुकर' जब जीवित था, उन दिनो द्विवेदी जी अपने परिचितो, मित्रों तथा अजनबियों तक से जबरदस्ती रुपये वसूल करके ग्राहक बनाया करते थे। उन्हें एक बार यह पता लग जाय कि कोई व्यक्ति उनके जनपद बुन्देलखण्ड की कुछ सेवा कर सकता है कि फिर उस पर वे आशीर्वादों की बौछार कर देते है।

इन पंक्तियों के क्षुद्र लेखक के पास उन्होंने इतने आशीर्वादात्मक पत्र भेजे हैं कि उनकी एक लम्बी-चौड़ी फाइल ही बन गई है। द्विवेदी जी अक्सर हमें धमकी दिया करते है "चोबेजी ! बम रिटायर होते ही मुझे तुम से काम लेने के लिए कुण्डेश्वर में जम के बैठना है।"

दुःख में—सुख में, हर्ष में—विषाद मे, उन्हें अपने जनपद का निरन्तर ध्यान रहता है। उनके जीवन की एक घटना हमें इस अवसर पर याद आ रही है।

कुण्डेश्वर (टीकमगढ) में प्रान्तीय-साहित्य-सम्मेकन की प्रबध-कारिणी समिति की मीटिंग हमने बुलाई थी। उसके कुछ दिन पूर्व द्विवेदी जी पर पुत्र-शोक का भयंकर बज्रपात हो चुका था और हमने यह आशा बिल्कुल नही की थी कि वे पधार सकेंगे।

पर द्विवेदी जी उस मीटिंग में पधारे। दैव दुर्विपाक से मोटर बीच में फेल हो गई और चार-पाँच घण्टे भूखे-प्यासे मार्ग में ही पडे रहना पडा। द्विवेदी जी ने उसका वृत्तांत खूब हँसते-हँसते सुनाया। इधर हम बडे लज्जित थे कि न तो हम सवारी का उचित प्रबन्ध कर सके और न ठहरने का ही। पर द्विवेदी जी ने अपनी असुविधा का कोई ख्याल नही किया, और उनके सक्रामक-साहित्यिक उत्साह को देख कर हमारी यह हिम्मत ही न हुई कि हम उनकी गार्हस्थिक दुर्घटना के विषय में सहानुभूति के दो शब्द भी कहते। पर उनकी आँखों के नीचे काले गड्ढे देख कर हमने उनकी हृदय-विदारक वेदना का अनुमान कर लिया और साथ ही उनकी हार्दिक-वंदना भी कर ली।

जो व्यक्ति अपनी घोर-से घोर विपत्तियो में भी माता सरस्वती को नहीं भूलता, वह निस्सन्देह आदरणीय है, वन्दनीय है, अनुकरणीय है।

बन्धुवर द्विवेदी जी शतायु हों, सब प्रकार सुखी और समृद्ध हों और उनकी समस्त जनपदीय तथा साहित्यिक मनोकामनाएँ पूर्ण हों, यही हमारी प्रार्थना है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

निवेदन

भारतीय-साहित्य में युग-परम्परा से काव्य को अपना विशिष्ट-स्थान प्राप्त है।

प्राचीन-काल से ही जन-जन के ज्ञान-बर्द्धन और मनोरंजन के जो साधन उपयोग में आते हैं उनमें भी काव्य की गणना की जाती है।

सर्वयुगीन और सर्वजनीन काव्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वह ऐसी हो कि जन-जन का हृदय स्पर्श कर सके और अपने शाश्वत-सत्य द्वारा उनके हृदय पर प्रभाव डाल सके।

'नव-निधि' का प्रणेता अपनी अल्पज्ञता से अनभिज्ञ नहीं है, फिर भी उसने यह प्रयास इस उद्देश्य से किया है कि जन-जन अपनी संस्कृति और भाषा-ज्ञान के साथ **ही** साथ अपने राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति सुदृढ़-आस्था और भरपूर अनुरूप रखें। उसकी तो यह प्रबल धारणा है कि इन विषयों पर विस्तारपूर्वक और बार-बार प्रकाश पड़ते रहने से परिणाम हितकर ही होगा।

ब्रज-भाषा में तो कितनी ही सतसइयाँ है, किन्तु खड़ी-बोली में इस प्रकार का संग्रह अभी देखने में नहीं आया, इसीलिए यह नगण्य प्रयत्न किया गया है। सम्भव है, समर्थ कविगण इस दिशा में अग्रसर हो कर अपनी भावपूर्ण कविताओं द्वारा भाषा-भारती का भण्डार अलंकृत करने की कृपा करेंगे।

हमारे आचार्यों की ऐसी मान्यता है कि शायद ही कोई कविता हो जो सर्वथा निर्दोष सिद्ध होती हो, फिर भी कोई विरला ही कवि होगा जिसको अपनी कविता प्रिय और निर्दोष न प्रतीत होती हो।

श्रीरामचरित मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी तक ने लिखा है :—

निज कवित्त केहि लाग न नीका,
सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर भनिति सुनत हरषाही,
ते नर पुरुष बहुत जग नाही।

बालकाण्ड/६

युग-परम्परा से हमारी मान्यता है कि वेद-ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त है। ईश्वर की कृपा से भिन्न-भिन्न ऋषियो के हृदयो मे उसका आविर्भाव हुआ; पश्चात् मानव-समाज में प्रचार और प्रसार हुआ।

पौराणिक-ज्ञान, जिसमें सृष्टि, प्रलय और वश का आभास है, अवतारों, देवनाओं और ऋषियों के कथनोपकथन से प्रचलित हुआ। उसका सम्पादन सर्वप्रथम कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने किया। उन ने चार लाख श्लोकों को अठारह पुराणों में विभक्त कर दिया।

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ही महाभारत जैसे महान् ऐतिहासिक-ग्रंथ के प्रणेता थे। श्रीमद्भगवद् गीता उसका ही एक अश विशेष है। गीता-ज्ञान गहन और अत्यत गूढ़ होते हुए भी इतना निष्पक्ष और उपयोगी है कि विश्व के मानव मात्र उससे लाभ उठा सकते हैं।

विश्व के प्रचलित ग्रंथों में श्री रामचरित मानस को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और भारतवर्ष में तो यही एक ग्रंथ है जो सर्वत्र श्रद्धापूर्वक पढ़ा और पूजा जाता है।

उक्त-ग्रंथों के आदर्श सर्वथा भारतीय-संस्कृति पर आधारित हैं और उनके अनुसार आचरण करने से मानव, मानव-समाज और विश्व भर के मानवों का कल्याण संभव है।

नव-युग के निर्माता राष्ट्र-पिता विश्व-वंद्य बापू और उनके शिष्य युग-पुरुष विनोवा भावे के जीवन-दर्शन से नयी पीढ़ी बहुत कुछ शिक्षा ले सकती है।

अपने राष्ट्, अपनी राष्ट्र-भाषा-हिन्दी और अपनी सस्कृति पर जन-जन को ममत्व और गर्व करना चाहिए जिससे वे सुरक्षित रह कर प्रगति कर सके।

भारतीय-ऋतुओं का विवरण भी मनोरजक और ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा।

हिन्दी-काव्य में नव-रस और अलकार यद्यपि नवीन विषय नही है, फिर भी इस विषय में रुचि रखने वाले उसमें कुछ न कुछ विशेषताएँ अवश्य प्राप्त कर लेंगे ऐसी आशा है।

'नव-निधि' के काव्य का मूल्याकन तो सुधी-पाठक और पारखी-विद्वान ही भली प्रकार कर सकेंगे, किन्तु जन-साधारण काव्य-सम्बन्धी त्रुटियों पर अधिक ध्यान न दे कर सग्रह की भावनाओं से कुछ भी प्रेरणा प्राप्त करेंगे तो लेखक को अनिर्वचनीय-संतोष होगा।

अन्तिम दो खण्डों में काव्य के विविध-ग्रंथों विशेषकर अपने मित्र स्व० साहित्य-सम्राट श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के रस-कलस से विशेष मार्ग-दर्शन मिला है, अतएव लेखक हृदय से उनका आभारी और ऋणी है।

'नव-निधि' को, पूर्व विधायक हिन्दी-जगत् के सुप्रसिद्ध साधक और विद्वान श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह ने अधिक पसन्द किया था, उस

पर उन ने भूमिका लिखने की भी कृपा की है। व्यौहार जी लेखक के घनिष्ट मित्र हैं अतएव औपचारिक कृतज्ञता-ज्ञापन उनको प्रिय न लगेगा।

'नव-निधि' के प्रथम सस्करण को चतुर्वेदी प्रकाशन हैदराबाद दक्षिण द्वारा प्रकाशित करने में साहित्य-विभूषण श्री मधुसूदन चतुर्वेदी का विशेष सहयोग रहा अतएव लेखक उनका अत्यधिक कृतज्ञ है।

विश्व के जन-मानस में यदि 'नव-निधि' द्वारा स्वस्थ चेतना का सचार हो सका, तो लेखक का प्रयास और श्रम सार्थक सिद्ध हो जाएगा।

शकर निवास
झाँसी नगर (उ. प्र.)
श्री वसत पंचमी २०२६ वि.
मगलवार १०-२-१९७० ई.

विनयावनत,
गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

भूमिका

देव वाणी संस्कृत और राष्ट्र भाषा-हिन्दी के आचार्यों ने युग-परम्परा से काव्य को विशेष महत्व दिया है, हमारे वेद, शास्त्र और पुराण आदि सब ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ काव्य-मय ही है।

राष्ट्र-भाषा-हिन्दी के क्रमिक विकास में भी काव्य का भरपूर योगदान रहा। काव्य द्वारा ही युग-युग की स्थितियों का बोध होता है और सच तो यह है कि जो काव्य शास्वत सत्य के जितना अधिक निकट होता है उतनी अधिक ही उसे लोकप्रियता प्राप्त होती है; फलस्वरूप वह सर्व-जनीन होने के साथ ही साथ सर्वयुगीन बन जाता है।

प्रस्तुत ग्रंथ—'शकर-नव-निधि'—मे भारतीय सस्कृति की चिरतन और चिरस्थायी भावनाओं को सुरक्षित रखने के साथ ही साथ राष्ट्रीय और साहित्यिक विचार-धाराओ को उचित रूप में व्यक्त किया गया है। श्री रामचरित मानस और महाभारत भारतीय-सस्कृति और साहित्य के प्रकाश-स्तम्भ है, उनमे वेद, शास्त्र, पुराण और स्मृतियो के ज्ञान का भण्डार समाया हुआ है। यही कारण है कि इन ग्रन्थों को सूमूचे विश्व में सर्वोच्चय स्थान प्राप्त हुआ है। इन ग्रन्थो द्वारा प्रसारित विश्व-प्रेम और विश्व-शांति की भावनाएँ जन-जन के हृदयों को प्रभावित कर रही है।

नव-निधि के प्रथम खण्ड में मानस का निष्कर्ष व्यक्त करते हुए लिखा गया है, "दुष्ट, दीन-दुख दूर कर, बांधी जग-मर्याद। जग-जन-जन,

सुख-शांति से, रहे, हो न विषाद ।"

सब समानता से सभी, पाएँ पूर्ण-प्रभुत्व ।
जिससे जन-जन लें समझ, सुख-स्वतंत्रता-तत्व ।
तज तृष्णा अधिकार की, करे कठिन कर्तव्य,
वर्तमान के साथ तब, हो भविष्य भी भव्य ।

इसी प्रकार द्वितीय खन्ड में श्रीमद्भगवतगीता का निष्कर्ष निकालते हुए व्यक्त किया गया है :—

जग-जन-जीवन में अधिक, विषमय-विषम-विषाद,
धरधीरज काटे उसे, रख कर निज मर्याद ।
करे कर्म निष्काम हो, त्यागे फल-आसक्ति,
कालान्तर में तब उसे, मिल जाती प्रभु शक्ति ।
भव सागर के पार-हित, ज्ञान यही शुभ-श्रेष्ठ,
जन-जन शाश्वत-शाति से, प्राप्त करें परमेष्ठ ।
वही सातवा स्वर्ग है, वही वहिश्त विशेष,
बौद्धों का निर्वाण वह, मुक्ति-ज्ञान-परिवेष ।
विजय-पराजय, वन-भवन, मान और अपमान,
समदर्शी ही मानते, सब को एक समान ।
युक्ति-शक्ति दोनो मिले, जब जग में एकत्र,
सिद्धि सफलता सद स्वयम, आ जाते सर्वत्र ।

उक्तज्ञान का अवलम्ब लेकर ही राष्ट्र-पिता-विश्व-वंद्य बापू ने बिना रक्त बहाए शक्ति-शाली विदेशी सत्ता के चगुल से देश को मुक्त किया और जन-जन को स्वाधीनता दिलाई। तृतीय खण्ड मे उस पर प्रकाश डाला गया है। बापू-जीवन-दर्शन-की विवेचना करते हुए चरित्र-गठन सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, स्वदेशी, हरिजनोद्धार, शारीरिक-श्रम सेवा, साधना और प्रार्थना करने पर बल दिया गया है।

बापू का स्पष्ट मत था।

दम्भी, द्वेषी, दुष्टजन, करते तर्क-कुतर्क,
वे असाधु करते नही, सुजन-साधु-सम्पर्क।
कहें अनीश्वरवाद के, मनगढन्त-आख्यान,
वे अशान्त-जन जगत में, पा न सकें कल्याण।
लोक और परलोक भी, दोनो होते सिद्ध,
सदा शान्ति-प्रद सुखद है, प्रभु-पद-पद्मप्रसिद्ध
प्रचलित कर प्रभु-प्रार्थना, कर उसका विस्तार,
बापू ने जग मे किया, ईश्वर—ज्ञान—प्रसार।
हुआ अनीश्वर-वाद का, अपने आप अभाव,
अमर रहेगे विश्व मे, बापू के सद्भाव।

राष्ट्र-पिता बापू के सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप दिया उनके शिष्य युग पुरुष विनोवा भावे ने। अपनी पद यात्रा, भूमिदान, सम्पत्तिदान और ग्राम-दान की विचार-धारा, द्वारा उनने अपरिग्रह सर्वोदय, आर्थिक-समानता, विश्व-कल्याण और विश्व-शान्ति जैसे महत्वपूर्ण विषयो पर विश्व के मानवों का ध्यान ही नही आकर्षित किया, उनको उचित मार्ग-दर्शन दिया। नव-निधि के चतुर्थ खण्ड में विस्तार पूर्वक इसका उल्लेख किया गया है। उनका स्पष्ट मत है :—

विश्व-प्रेम से ही सुलभ, सघ-शक्ति एकत्र,
सिद्धि स्वयम सभव तभी, यत्र-तत्र-सर्वत्र।
प्रभु-आराधन से स्वयम, बनती बुद्धि विशुद्ध,
बने सिद्ध, साधक सदा, पावन परम प्रबुद्ध।
परोपकार करके कभी, करे नहीं फल-आस,
श्रेयस्कर होते तभी, उसके सफल प्रयास।
कर्ता-धर्ता विश्व के, वही एक सर्वत्र,
भक्ति-भाव रख कर यही, करे प्रार्थना यत्र।

राष्ट्र-पिता विश्व-वंद्य बापू ने अपने भाषणों में बार-बार यही कहा था कि जिस रोज प्रत्येक भारतीय अपने उद्धार में लग जाएगा, भारतवर्ष के उद्धार का मार्ग अपने आप खुल जाएगा। पंचम खण्ड, में भावना भूषित-भारतवर्ष के अन्तर्गत स्वराष्ट्र-सवर्द्धन की भावनाएँ जागृत की गई हैं। विषय-प्रवेश में राष्ट्र की प्राचीन-महत्ता, प्राकृतिक सौंदर्य और अन्य विषयों का गुणगाण है; पश्चात् प्रत्येक प्रदेश की विभूतियों की प्रशसा है। कवि ने अपना निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है कि प्रत्येक राष्ट्र की रक्षा वहाँ के कृषक, खाद्यान्न उत्पन्न कर, वहाँ के वीर युद्ध-भूमि में प्राणों का उत्सर्ग करके और वहाँ के कवि अनुकूल क्षेत्र और वातावरण तैयार करके अपनी ओजमयी बाणी तथा सशक्त लेखनी द्वारा राष्ट्र की रक्षा करते हैं। वे राष्ट्र, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते है, सचमुच ही धन्य है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए लिखा गया है।

रक्षित रखते राष्ट्र को, कृषि, कृपाण, कवि-कर्म,
धन्य राष्ट्र, जन-जन जहाँ, प्रतिपाले निज धर्म।

राष्ट्र का आदर्श व्यक्त करते हुये लिखा गया है :—

अखिल विश्व विस्तृत वृहद, है अपना परिबार,
युग युग यह आदर्श रख, करें प्रेम-व्यवहार।
जन-जन जग में जिएँ सब, कर सुशान्ति विस्तार,
जीने मे सुख मिले तब, यही नीति का सार।
रहे धर्म-निरपेक्षसव, उन्नत बने समाज,
विश्व विदित बन कर रहे, रामराज्य-सा राज।

राष्ट्रीय-भावनाओं को विकसित करने के साथ ही साथ अपनी संस्कृति की भी रक्षा करना नितांत आवश्यक है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय, प्राचीन पर्व हमारी सस्कृति के रक्षक

और पोषक हैं। उनसे जन-जन युग-परम्परा से प्रेरणा, उमंग और उत्साह प्राप्त करते हुए चले आ रहे हैं। कवि ने ठीक ही लिखा :—

प्राणि-मात्र से प्रेम कर, लें प्रभु से वरदान,
जिससे जग-जन शान्ति-प्रिय, हों पाएँ कल्याण।

'नवनिधि' के षष्टम खण्ड में वर्ष भर के भारतीय-पर्वो और व्रतों का उल्लेख करके श्लाघनीय कार्य किया गया है।

भारतवर्ष में ऋतु-वर्णन की परम्परा अधिक प्राचीन है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भी षट ऋतु-वर्णन किया गया है। यथा :—
तप्त ग्रीष्म, पावस सरस, शरद, शिशर, हेमन्त,
षट-ऋतु सुखकर, स्वास्थ्य प्रद, हे ऋतुराज वसन्त।

सप्तखन्ड में ऋतुओं पर सांगोपाग वर्णन किया गया है।

'नवनिधि' के अष्टम खण्ड में काव्य के नौ रसो का अपने ढंग से विवेचन किया गया है। वैसे प्राचीन काल से ही संस्कृत और प्राकृत की सप्तशती परम्परा के अनुसार ब्रजभाषा मे सतसई-काव्यो की रचना हुई थी, जिनमें विहारी-सतसई का अपना एक विशिण्ट स्थान है। उनका ही अनुकरण करके खड़ी बोली में भी वीर-सतसई, करुण-सतसई और अन्य कितनी ही सतसइयों की रचना हुई थी। उन सतसइयों में विभिन्न विषयों के दोहे बिखरे हुए मिलते है। किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रत्येक विषय के अलग-अलग खण्डों द्वारा दोहो का वर्गीकरण करके पाठकों को विशेष सुविधा दे दी गई है। कवि की मान्यता है कि राष्ट्र की रक्षा वीरों, बलवानों और विद्वानों द्वारा ही होती आई है। वे राष्ट्र भाग्यशाली है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति इस रहस्य का जानकार है। यथा :—

(६) रक्षित रखते राष्ट्र को, वीर, वली, विद्वान्,
न्यराष्ट्र, जन-जन जहाँ, रस-रहस्य रुचिमान।

'नव-निधि' का नवम खण्ड अन्तिम है, इसमें काव्य में अलंकार का महत्व प्रदर्शित किया गया है। हमारे आचार्यों ने यह आवश्यक माना है कि काव्य में अलंकार हो तब ही वह सर्वयुगीन उत्तम काव्य की श्रेणी में स्थान पा कर जीवित रह सकता और सम्मानित हो सकता है, अन्यथा असमय ही वह काल—कवलित हो जाता है।

प्रस्तुत खण्ड में—'काव्यं रसात्मकं वाक्यम', की व्याख्या से प्रारम्भ करके शब्दावलंकार, अर्थालकार और उभयालंकार पर विस्तार पूर्वक लिखा गया है। रस और अलंकार के विवेचन की यह शैली हिन्दी-जगत मे अपने ढग की अत्यन्त निराली और सुविधा-जनक है, अतएव अधिक प्रशंसनीय है।

'नवनिधि' के परिशिष्ट में भी गुरु-महिमा, विद्या-महिमा, सतसग-महिमा और धन की उपयोगिता जैसे विषयों पर भी सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है, जो भावोत्पादक है।

ग्रन्थ का अनुशीलन करनेवाले सज्जन अपने आप अनुभव करेंगे कि खड़ी बोली में अपनी शैली की यह विशिष्ट रचना है, जिसमें काव्य के विविध अंगों, रसों और अलकारों का सरल रूप में उल्लेख किया गया है।

यह भी विचारणीय है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में साहित्यिक अश जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही इसका सास्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय-पक्ष भी प्रबल है, और यही बात आधुनिक काल में उसकी उपयोगिता सिद्ध करने की उत्तम कसौटी है। ग्रन्थ के एक सहस्र दोहों में अधिक ऐसे हैं, जिनमें शाब्दिक चमत्कार, यमक, वृत्यानुयास और अन्य कितने ही अलकारों की छटा दिखलायी देती है, कितने ही दोहों में अर्थ-गोप्यता और प्रसाद गुण प्रचुर मात्रा में है। तात्पर्य यह है कि ध्यान-पूर्वक अनशीलन किया जाए, तो अखण्ड 'नव-निधि' के खण्ड-खण्ड में

आनन्द का सागर लहराता हुआ मिलेगा। महाभारत के सम्बन्ध मे जैसा कहा गया है कि उसके पर्व-पर्व में इसका उदय होता गया है।

'पर्वे पर्वे रसोदयः' उस प्रकार की 'नव-निधि' के प्रत्येक खण्ड मे रस का उदय होते-होते अन्तिम खण्डों मे रस का पूर्ण परिपाक हो गया है। फलस्वरूप-ग्रन्थ में अनुभूतियों की विशिष्टता, काव्य-अभिव्यजना और सबसे बढ़ कर स्पष्ट धारणाओ का निष्कर्ष परिलक्षित हो उठा है जिससे निस्सकोच यह कहा जा सकता है कि धार्मिक, राष्ट्रीय और साहित्यिक तीनों ही दृष्टियों से 'नवनिधि' अधिक उपादेय हो गया है।

'नवनिधि' के प्रणेता श्री गौरीशकर द्विवेदी 'शकर', बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न राष्ट्र-भाषा हिन्दी के पुराने और मँजे हुए लेखक और कवि हैं। इनका दस भागों में समाप्त बुन्देल-वैभव अथवा बुन्देलखन्ड के २००० हिन्दी कवियों का सांगोपांग इतिहास विशेष प्रसिद्ध पा चुका है। गीता-गौरव, सुकवि-सरोज, और २२२३ छंदों का काम रूप-काव्य-महा-काव्य और अन्य कितने ही ग्रन्थों के ये रचयिता है। भाषा-भारती के भण्डार में अभी और भी कितनी ही भेंटे वे चढ़ायेंगे, ऐसी भरपूर कामना करते हुए मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी जगत में—'नवनिधि'—को भरपूर सम्मान मिलेगा।

—व्योहार राजेन्द्रसिह

व्योहार भवन
जबलपुर (म. प्र.)

प्रथम खण्ड

मानस-मणि-मुक्ता : (श्री राम–यश–धारा)

राम-नाम-मणि दीपधरि, जीह देहरी.द्वार,
'तुलसी' भीतर बाहरउ, जो चाहसि उजियार।

——तुलसी

—भारत में यदि कोई ग्रंथ झोंपड़ियों से महलों तक मे स्थान पा सका है, तो वह तुलसीकृत रामायण है। मेरी तो रामायण में अतुल-श्रद्धा है।

—राष्ट्रपिता विश्व-बंद्य बापू

—भारत ने कितनी दफा आज़ादी खोई, मगर वह नष्ट नहीं हुआ; लेकिन यदि उसने रामायण खोई होती, तो वह ज़रूर नष्ट हो जाता। आज वह रामायण के कारण ही सिर ऊँचा कर रहा है।

——युग-पुरुष विनोबाभावे

राम भगति मनि उर बस जाके,
दुख लवलेश न सपनेहु ताके।

——तुलसी

श्री गणशायनमः

मंगलाचरण

ऋद्धि-सिद्धि-दाता परम, प्रण-पालक गणराज;
करें सिद्ध सद्‌भाव से, सब कवियों के काज।

सुमरें गुरु, गणपति, गिरा, है लोकोक्ति प्रसिद्ध;
"साधक दृढ़ रह इष्ट पर, हो जाता है सिद्ध।"

जिनकी जग-चर्चित घनी, लीला-ललित-ललाम;
रहें दाहिनें शान्तिप्रद, सीतापति-श्रीराम।

कण-कण, क्षण-क्षण में रमे, विविधरूप वे एक;
जागृत जन-जन में करें, 'शंकर' हृदय-विवेक।

चन्दन चर्चित चरण-रज, शिरधर करूँ प्रणाम;
रहें सहायक सदाशिव, चन्द्रमौलि सुखधाम।

वरदायनि माँ सरस्वती, होकर परम-उदार;
दया-दृष्टि से कीजिए, विमल-बुद्धि विस्तार।

विश्व-शान्ति-प्रद भावना, काव्य-कला-रसरंग;
वर-वाणी-वैभव-विशद, प्रगटें प्रचुर-प्रसंग।

चरित्र चित्रण—

'मानस' में मिलते विविध, गुण-गरिमा-आदर्श,
जिनको अपना कर करें, जग-जन-जन उत्कर्ष।

'मानस' में हैं महत्तर, सब आदर्श-चरित्र;
बहता जिनमें सुयश का, परिमल परम-पवित्र।

चक्रवर्ती राजा दशरथ—

थे समर्थ, देते रहे, गुरु को मान विशेष,
गुरु-गृह जा कर स्वयम् निज, कहते थे उद्देश।

विद्याध्ययन के लिए भी, अपने राजकुमार,
गुरु-गृह ही भेजे सभी, यद्यपि थे सुकुमार।

कठिन कष्ट सब सहे पर, रक्खी निज कुल-लीक,
सत्य-धर्महित वे बने, रघुकुल-सूर्य-प्रतीक।

कैकयी को वरदान दे, वन भेजा श्रीराम;
अमर कर गए विश्व में, अपना ऊँचा नाम।

राम-विरह में तज गए, यद्यपि अपने प्राण;
किन्तु वंश-मर्याद की, रक्खी अपनी आन।

सत्य, साधना, शान्ति से, कर कर्तव्य कठोर;
अर्जित की थी कीर्ति युत, सफल सिद्धि सब ओर।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम—

जग जन-जन जिनका करें, इष्ट मान सम्मान
उनका पावन-पुण्य-प्रद, है गुण-गौरव गान।

जीवन-भर जग में किए, उनने उत्तम काम;
सफल लोक-नायक रहे, जगत-पूज्य श्री राम।

न्याय, नीति, नय, निपुणता, से सम्पन्न समाज;
शान्त, सुखी सब थे जहाँ, था ऐसा वह राज।

एक घाट पानी पिएँ, बकरी, बाघ सदैव;
मित्र मान हिल मिल रहे, दे न दुःख दुर्दैव।

जग जन-जन प्रभु से यही, करें कामना आज;
बने समुन्नत विश्व में, राम-राज्य-सा राज।

भ्रात-भक्तभरत—

मिला राज्य, त्यागा उसे, बन कर व्रती विशेष,
रहे साधनालीन ही, रख कर साधक-वेष।

अपरिग्रही हो कर रहे, पूरे चौदह-वर्ष,
राम अवध लौटे तभी, हुआ उन्हें था हर्ष।

भक्ति-भावना भरी थी, उनके उर दृढ़-प्रीति,
समझी सुखदा, सिद्धिदा, रामचरण-रस-रीति।

झेले उनने शान्ति से, सब सहर्ष संघर्ष;
गाएगा गुण-गीत को, युग-युग भारतवर्ष।

उनको माया, मोह, मद, कर न सका आसक्त;
कहाँ मिलेगा भरत-सा, भ्रात-भक्ति-अनुरक्त

आदर्श अनुज लक्ष्मण—

निज स्वभाव मे वीर, क्षत्रिय-गुण भरपूर;
विरला ही होता जगत, लक्ष्मण-सा रणशूर।

वसुधावीर विहीन कह, जनक हुए ज्यों मौन;
बोले लक्ष्मण क्रोधयुत, 'शब्द सुने ये कौन।'

'जिस समाज में वीर—वर, बैठे हों श्रीराम;
सुन वाणी-अनुचित न हो, क्यों कर दुष्परिणाम।

हुई, न है, ना हो सके, 'वसुधावीर-विहीन।'
जनक विचारें, देख लें, रख निज दृष्टि नवीन।

'धनुष टूटना क्या कठिन, करूं कठिन कुछ काज;
जिससे जग-वीरत्व को, समझे सकल समाज।'

परशुराम से वीरवर, बली, तपस्वी, देव;
हारे लक्ष्मण से स्वयम्, समझ-बूझ सब भव।

त्याग राज्य-सुख, सम्पदा, वैभव, विषय-विलास;
स्वेच्छा से साधक बने, प्रभु के अनुगत दास

आदर्श राजमाता-कौशिल्या—

चौथेपन में राम को, पाकर थीं संतुष्ट;
कब सोचा था दैव फिर, होगा उनसे रुष्ट।

तिलकोत्सव की जगह जब, हुआ राम-वनबास;
धीरजधर उनने दिया, उनको राज्य—अवास।

राम, सीय लक्ष्मण सहित, गए छोड़ निज देश;
दशरथ सुरपुरचल दिए, सह न सके सब क्लेश।

कौशिल्या ने धीर धर, काटे कष्ट-कराल;
समझाया सब भाँति से, भरत मान निज लाल।

सुख-दुख दोनों में सदा, रख कर समता भाव;
प्रगट कर दिया विश्व में, अपना परम:प्रभाव।

रानी कौशिल्या हुई, हर प्रकार से धन्य;
भाग्यशालिनी कौन जग, उनसी माता अन्य।

आदर्श जगज्जननी सीता—

सुख-साधना सर्वस्व तज, चलीं विषम-वन-पाथ;
भोगा सुख-दुख धैर्य धर, सदा राम के साथ।

भोग त्रास लंकेश के, काट सकल दुख-द्वन्द्व;
यद्यपि लौटीं अवध में, फँसीं पुनः भव-फंद।

निर्वासित होकर रहीं, बाल्मीकि के धाम;
सफल साधना से हुई, उनकी कीर्ति-ललाम।

आदर्श माता---सुमित्रा---

हुआ राम-वनवास से, जिसको अतिशय खेद;
प्रगट किया फिर भी नहीं, जिसने अपना भेद।

लक्ष्मण को शिक्षित किया, दिया उच्चतम ज्ञान;
सीता-राम सदैव हैं, माता-पिता समान।

अवध वहाँ ही है जहाँ, सीता-राम-निवास;
सेवा-रत रह कर सदा, रखना दृढ़-विश्वास।

इस प्रकार उपदेश दे, है माता क्या अन्य;
विश्व-बन्दिता जगत में, बनी सुमित्रा धन्य।

आदर्श माता-कैकेई--

निज सुत से भी अधिक प्रिय, जिसको थे श्रीराम;
हुई भाग्यवश जग वही, अतिशय अपयश-धाम।

विधि-विधान-वैचित्र्य है, उसका ओर न छोर;
प्रभु इच्छा से चले जग, नहीं किसी को खोर।

चित्रकूट में भेंट कर, श्रद्धायुत श्रीराम;
कैकयी को समझा-बुझा, दिया ज्ञान गुण-धाम।

चित्रकूट चिंताहरण, पावन परम प्रयाग,
सदा शान्ति पाते सुबुध, कर इनसे अनुराग।

संचित कर्मों से बने, जन-जन की प्रारब्ध;
उचित यही, जग-जन्म ले, करे कर्म निस्तब्ध।

शान्त-चित्त श्रीराम ने, सुखद धर्म का सार,
माता को देकर किया, जग-परोक्ष-उपकार।

सुत-सनेह-सुख उर भरे, रक्खे दृढ़-वृत-नेम;
माता से भी अधिकतर, करे विमाता प्रम।

भाग्य-विबश भोगे अधिक, जीवन में संघर्ष;
अन्त प्रशंसित ही रहा, कैकेयी--आदर्श।

आशुतोष--भोलानाथ--शंकर--

सतत साधना से बने, सिद्ध-संत-शिरमौर;
भोलानाथ भला कहाँ, आशुतोष-सा और।

भक्ति-भावना भर हृदय, वन में किया निवास;
तीर्थ-प्रवर पावन बना, विश्व विदित कैलास।

उच्चकोटि का रख हृदय, राम-नाम-अनुराग;
साधारण-सी भूल पर, किया सती का त्याग।

साधन सात्विक शुद्ध, जप, तप, संयम लीन;
प्रलयङ्कर-शंकर बने, गुण-गण-गरिमासीन।

बाघाम्बर बैठक बना, भूषण-भस्म-भवूत;
अपरिग्रही आदर्श अति, पाया परम प्रभूत।

जटा-जूट जंगल बने, घने-घने घमसान;
भ्रम—भूली भटकी जहाँ, भागीरथी-महान।

गंगा-धारी, धर्म-ध्वज, धीर-वीर देवेश;
दिन-दिन देते दान हैं, अर्द्धनग्न रख वेष।

गंगाधर हर ही हरें, दुष्ट-दर्प दमनीय;
जग जन-जन जानें बिबिध, काव्य-कथा कमनीय।

नित नंगा-नंगा कहें, पाएँ परम प्रमोद;
खिल-खिल खुल खेलें सभी, ऐसी उनकी गोद।

वीतराग हों स्वयम् शिव, हो समाधि संलग्न,
मानवीय अभिव्यक्ति से, करें विश्व को मग्न।

मुख-माँगा मिलता सदा, याचक रहें निहाल;
विश्वम्भर निश-दिन करें, अखिल विश्व प्रतिपाल।

आदर्श-भक्त-सेवक हनुमान—

माना मन से राम को, इष्ट-प्रवर आराध्य;
किए काम कमनीय थे, जिससे साध्य-असाध्य।

राम-भक्त होकर बने, वे धृति-धर्म-धुरीण;
दे प्रशस्त-पथ पुजे जग, पावन परम प्रवीण।

भक्ति-भावना भर किए, साधन, सेवा-कार्य;
महावीर-महिमा महा, युग-युग गाते आर्य।

निज मुख से श्रीराम ने, दिया श्रेय शत बार;
जग-जीवन जिससे स्वयम्, सिद्ध सफल संसार।

प्रभु-पद-पावन- प्रभा पर, प्रमुदित परमानन्द—
—पाकर, सात्विक शान्ति से, रहे सतत स्वच्छद।

मुक्ता-मणि, सुख-सम्पदा, तुच्छ मान कर नित्य;
रामचरण-रत रह सदा, माना विश्व-अनित्य।

संगम से जो भक्तजन, करते उनकी भक्ति;
दुःख, दीनता दूर कर, देते उनको शक्ति।

बिबिध वीरता से विशद, अरि-दल किया समाप्त;
जिससे उन ने कर लिया, महावीर पद प्राप्त।

संकट काटें भक्त के, दे निज शक्ति नवीन;
पाता चारों फल सुखद, हो यदि भक्त-प्रवीण।

हुआ न होगा विश्व में, हनूमान-सा भक्त;
मन, बल, क्रम से जो रहा, सदा राम आसक्त।

'मानस' का निष्कर्ष—

गुरु-महिमा—

गुरु-प्रसाद पा कर बने, जग-जन-जीवन शुद्ध;
सिद्ध किया इसको स्वयम्, तुलसीदास प्रबुद्ध।

सत्संग-महिमा--

चारों फलदाता सुखद, सज्जन-साधु-समाज;
जग-जड़-जन तक संग से, सुधर करें शुभ-साज।

सन्त-वन्दना--

तप-तप ताप सुसन्त सब, देते गुण-गण-सार;
वन्दनीय वे बुद्धिवर करते जग-उपकार।

असन्त-वन्दना--

खल-गण की महिमा-महा, विश्व-विदित विख्यात;
उनका भी वन्दन करे, करें नहीं उत्पात।

जीव-मात्र की वन्दना--

समता से सबमें लखे, एक सच्चिदानन्द;
जग-जड़-जंगम-जीव सब, बन्दे तज छल-छन्द।

आचार्य तुलसी की महत्ता--

साधक, सिद्ध सुसन्त वर, महा--महिम मतिमान;
'मानस' से ही सिद्ध यह, थे तुलसी विद्वान।

महाशिव की महानता--

शुद्ध-साधना सफल तब, करे भक्ति अनुराग;
शिवशंकर ने भक्ति-हित, किया सती का त्याग।

पार्वती की कठिन तपस्या—

त्याग देह निज सती ने, लिया जगत अवतार;
पार्वती हो तप किया, हुआ मुग्ध संसार।
मंत्र-मुग्ध मन मे सभी, साधु-वृन्द थे तुष्ट;
स्वयम् शक्ति शिव करेंग, भक्ति—पूर्ण परिपुष्ट।

शिव-पार्वती का विवाह—

कठिन कष्ट काटे बिबिध, विश्व विदित दुर्द्धर्ष;
पार्वती पाया परम, तब जीवन-उत्कर्ष।
शिव-शंकर से हुआ फिर, महाशक्ति का ब्याह;
जिससे जग-जन के हृदय, आया अमित उछाह।

अवतार के कारण—

कथा, नाम. अगणित अमित, हरिगुण रूप अनन्त;
गुण-गण गाते सन्त सब, पार न पाते अन्त।
धर्म-क्षीणता देख जग, निज लीला बिस्तार,
शान्ति-व्यवस्था के लिए, प्रभु लेते अवतार।
भ्रम-भावों में भूल कर, जो करते अभिमान;
उनको प्रभु देते स्वयम्, सुमति शान्ति सद्ज्ञान।

अयोध्या का आदर्श—

दशरथ-सुत बन कर किए, कार्य कठिन कमनीय;
जिससे जग-जींवन हुआ, सुखद, शान्त रमणीय।

दुष्ट, दीन-दुख दूर कर, बाँधी जग—मर्याद;
जग-जन-जन,* सुख शान्ति से, रहें, करें न विषाद ।
सब समानता से सभी, पाएँ पूर्ण प्रभुत्व;
जिससे जन-जन लें समझ, सुख-स्वतंत्रता-तत्व ।
तज तृष्णा अधिकार की, करें कठिन कर्तव्य;
वतमान के साथ तब, हो भविष्य भी भव्य ।
विद्या, विनय, विवेक हैं, मानव के श्रृंगार,
उनके उचित प्रयोग से, सफल बने संसार ।
किन्तु कहीं कोई अगर, अनजाने आदर्श;
आमंत्रण रण का करे, हो स्वीकार सहर्ष ।
परशुराम की कीर्ति को, करके वे खग्राम;
सुभट राम-लक्ष्मण बने, विश्व-बंद्य सुखरास ।
माता से भी विमाता, मान्य अधिक, कुल-रीति,
वन जाकर श्रीराम ने, कर दी उज्जवल-कीर्ति ।
माना मित्र निषाद को, देकर उच्च स्थान;
बनें राम तारण-तरण, फहरे ध्वजा-निशान ।
सदय स्वयम् सुग्रीव को, देकर पूर्ण ममत्व;
सिखलाया सब सुयशप्रद, राजनीति का तत्व ।
अंगद को युवराज-पद, देकर किया सनाथ;
भक्त विरुद गा कह उठे, समदर्शी रघुनाथ ।

सेवा से सुख, सम्पदा, शौर्य, शान्ति, सर्वस्व;
मानव पाता त्याग से, छोड़े स्वयम् निजस्व।

हनुमान इस मंत्र से, जग में पुजे विशेष;
गुण-गरिमा गा—गा थके, सिद्ध, शारदा, शेष।

महावीर-पद प्राप्त कर, हुए जगत में धन्य;
हुआ नहीं, होना नहीं, उन सा भक्त अनन्य।

रावण को निजवंशयुत, करके मोक्ष प्रदान;
विश्व-बंद्य बन कर पुजे, रामचन्द्र-भगवान।

बन्धु विभीषण बन गया, प्रभु का बन्धु-विशष;
सफल किया निज भक्ति से, लंकापति का वेष।

सीता ने वनबास कर, दिया वंश को मान;
मर्यादा रघुवंश की, इससे हुई महान।

'मानस' में वर्णित सभी, हैं आदर्श चरित्र;
उनका पारायण किए, भरते भाव पवित्र।

राष्ट्र समुन्नत हो तभी, ले ऊँचा आदर्श;
अश्रेयस्कर अहितकर, भेद-भाव, संघर्ष।

अपनाकर आदर्श, अब. उन्नत बने समाज;
तब आ सकता देश में, राम-राज्य-सा राज।

द्वितीय-खण्ड

गीता-ज्ञान-गंगा (श्रीमद्भगवद् गीता से)

गीता सुगीता कर्तव्य किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्माद्विनिः सृता ॥

——महाभारत

जप, तप, संयम, साधना, सब का है यह सार;
हरे दीन-दुख सर्वदा, रह कर परम उदार ।

'शंकर'

युक्ति-शक्ति दोनों मिलें, जब जग में एकत्र;
सिद्धि, सफलता सब स्वयम्, आ जाते सर्वत्र ।

'शंकर'

गीता-गान-गंगा (श्री मद्भगवद् गीता से)

कर्म, निष्काम-कर्म, कथनी और करनी—

अपनी शक्ति विचार कर, जो बढ़ते अविराम;
सिद्ध साधना से सभी, होते उनके काम।

कथनी कम करके करे, करनी जो दिन-रात;
दुखी बना सकते नहीं, उसको जग-व्याघात।

निज कर्तव्य विचार जो, करें कर्म निष्काम,
युग-युग यश मिलता उन्हें, रहता जग में नाम।

जागृत जन के हृदय में, कठिन काल का ज्ञान;
वे जग-वैभव पर कभी, करें नहीं अभिमान।

शक्ति-तौल संलग्न हो, करते हैं जो काम;
सिद्धि-साधना वे स्वयम्, बनें सुयश-सुख-धाम।

कथनी करनी एक रख, बढ़े लक्ष्य की ओर,
प्राप्त सफलता वह करे, हो आनन्द-विभोर।

अकर्मण्य जग जो जिएँ, जीवन उनका व्यर्थ;
कर्म-कसौटी कस कढ़ें, सच्चे शूर समर्थ।

कर्म किए ही जगत में, पाते सब सम्मान;
अकर्मण्यता-पाप-पथ, यह युग-युग का ज्ञान।

निज कर्तव्य विचार कर, जो जन करते काम;
उनको सिद्धि-असिद्धि में, मिलता शुभ परिणाम।
कभी न होते वे यहाँ, निज असिद्धि से खिन्न;
सिद्धि-प्राप्ति पश्चात् भी, करें कार्य अविच्छिन्न।
दोनों में समभाव रख, करें निरन्तर कर्म;
इस प्रकार करते सफल, दे निज मानव-धर्म।
अज्ञानी ही अधिकतर, करते विविध विबाद;
कर उठते बहुधा वही, विज्ञों जैसा बाद।
लाभ, लोभ, लिप्सा तजे, रहे कर्म में तुष्ट;
प्रकृति-प्रपंचों पर बिजय, पा कर हो संतुष्ट।
कर्मों से होता सुलभ, 'शंकर' सब सुख-स्वर्ग;
शुभ फलदाता कर्म-शुभ, वे देता अपवर्ग।
कर्म-श्रेष्ठता में मिला, जिनको जीवन-तत्व;
वे सुयशी पाते जगत, बिधिवत बिश्रि महत्व।
सतत कर्मरत रह करे, जन-जन का उपकार;
यश-शरीर से वे अमर, करें सफल संसार।
जप, तप, संयम, साधना, सबका है यह सार;
हरे दीन-दुख सर्वदा, रह कर परम उदार।
सर, सरिता, वापी, विटप, परहित करें महान;
जन-जन-दुख हरते सुजन, रख कर सबका ध्यान।

सफल साधना सतत वह, जिसमें नित्यानन्द;
जन-जन सुख पाएँ, रहें, सदा सभी स्वच्छन्द।

परहित-साधन में सुजन, रहते जो अनुरक्त;
उनके बन जाते स्वयम्, जन-जन अनुगत-भक्त।

कथनी कम करिए जगत, करनी करिए नित्य;
सीख सुखद देता यही, दिन-दिन उग आदित्य।

सुधी, सूरमा, साधु, सब, आए, उतरे पार;
करनी कर कर नर-अमर, पाता जग-सुख-सार।

पर-हित-सेवा-रत रहें, सह-सह कष्ट अपार;
सफल जन्म-जीवग जगत, उनका सर्व प्रकार।

स्वार्थ-सनेजो जन जिएँ, कर-कर घोर अनर्थ;
असफल अधिक अनेक विधि, उनका जीवन व्यर्थ।

तन-मन-धन देकर करें, जो जन पर-उपकार;
उनका बनता हर तरह, सफल स्वयम् संसार।

पुण्य परम, परहित किए, है पर-पीड़ा पाप;
मंत्र मान मन में धरें, सुबुध बनें वे आप।

ध्यान—योग—

विषय-बासना दूर कर, रहे कर्म अनुरक्त;
इन्द्रिय कर अधिकार में, उनसे रहे विरक्त।

कर करके अभ्यास वह, होता जब अभ्यस्त;
तब योगी पाता सुपथ, पावन परम प्रशस्त।

ध्यान धरें संलग्न हो, मन-चंचलता त्याग;
जप, तप से मिलता तभी, उसे सिद्धि—अनुराग।

मुक्ति-मार्ग में यदपि हैं, बाधाएँ, दुख-द्वन्द्व;
शान्त-चित्त से सुलभ जग, सचमुच परमानन्द।

उपासना--

शक्ति एक, जग में विविध, उसके अगणित अंग;
उसे प्राप्त करते सुजन, भजकर श्रद्धा संग।

कण-कण, क्षण-क्षण में रमा, त्रिभुवन-पति वह एक;
भजो उसे संलग्न हो, रख कर हृदय विवेक।

जो जन जिसको भज रहा, निज श्रद्धा अनुसार;
उसके द्वारा ही उसे, मिले सिद्धि-सुख-सार।

एक इष्ट से ही सरें, सब के सब ही काम;
तन्मय होकर जो भजें, मिलें उन्हें श्रीराम।

भक्ति-भावना भर हृदय, कर-कर पूर्ण प्रयत्न;
रक्खे अपने इष्ट की, मन में मूरत-रत्न।

सुजन साधना से स्वयम्, साधन करें अनेक;
सिद्धि सुलभ संभव तभी, जागे हृदय विवेक।

सुदृढ़-साधना-शक्ति से, सरें सहज सब काम;
एक इष्ट साधे स्वयम्, पाता मन बिश्राम।

छापा, माला, मंत्र सब, संग सुमरिनी हाथ;
मन बश में जब तक नहीं. एक न देते साथ।

हैं उपासना के यही, सरल सूक्ष्म सब तत्व;
मूल मंत्र मन में धरें, पाएँ सुजन महत्व।

ज्ञान—यज्ञ—

मोह, पाप, संदेह को, करे नष्ट हो शुद्ध;
तब मिलती है भक्त को, प्रभु की भक्ति विशुद्ध।

यज्ञ और अवतार में, रख कर श्रद्धा--भाव;
राग-द्वेष, कामादि का, कर दे पूर्ण अभाव।

द्रव्य—यज्ञ से जगत में, ज्ञान—यज्ञ है श्रेष्ठ;
इसके साधन से सुलभ, पाना प्रिय परमेष्ठ।

जन्म--मृत्यु और आत्मा--

जो जन्मा जग, वह रहे, निज आयुष अनुसार;
मृत्यु, अंत अनिवार्य है, यही ज्ञान का सार।

बाल, युवापन भोग कर, हो शरीर जब क्षीण;
देहान्तर अन्तिम—दशा. पा हो पुनः नवीन।

स्वजनों के अवसान पर, होता सब को खेद;
भूलें स्वतः विषाद यदि, हो जागृत यह भेद।

नश्वर-जग में आत्मा, अजर अमर, अज्ञेय;
उसका क्षण संभव नहीं, गूढ़-ज्ञान यह ज्ञेय।

शस्त्र छेद सकते नहीं, आत्मा का सद्भाव;
देहान्तर पर हो नहीं, उसका कभी अभाव।

जन्म—मृत्यु के मर्म को, समझ करे नर कर्म;
जिससे पूरे सध सकें, जग-जन-जीवन-धर्म।

जो आया, सो जायगा, सार—रूप. जग-खोज;
वीरबली बिक्रम गए, भुव—भूषण भी भोज।

जो जन जीवन—जन्म का, समझ सकें गुरु—तत्व;
कर—कर पर उपकार वे, पाते पूर्ण महत्व।

भवसागर के पार हित, हैं सद्मार्ग अनेक;
'शंकर' सदा सुगम उन्हें, जिनके हृदय विवेक।

इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति—

विषय—वासना ही करे,. राग—द्वेष उत्पन्न;
उसका चिन्तन त्याग नर, बनता गुण—सम्पन्न।

इन्द्रिय का करके दमन, इच्छाएँ दे त्याग;
निर्मल-मन पाता स्वयम्, तब सत्पथ-अनुराग।

दूर कर सकें विषय से, इन्द्रिय की आसक्ति;
वे ही साधक पा सकें, प्रभु की श्रद्धा-भक्ति।

सुख-दुख का विवेचन—

दुख में दुखी न हो कभी, करे नहीं अवसाद;
दुख, सुख माने एक सम, हो तब नही विषाद।

राम, कृष्ण, गौतम सभी, भोगे जग--अपकर्ष।
अमर कर गए नाम निज, देकर उच्चादर्श।

दारुण-दुख दे अन्त में, सबको मार्ग प्रशस्त;
जिससे जन--जन करें निज, मोह, मान, मदध्वस्त।

दुख-दरिद्रता में सभी, होते दुखी मलीन;
वे ही सुख पा भूलते, कैसे रहते दीन।

सुख, दुख दोनों में रहे, जो जन कर्मारूढ़;
करे लोक-द्वय सफल वह, बनता नहीं विमूढ़।

समदर्शी हो वह करे, कर्म सदा निष्काम;
हो जाता तब स्वतः ही, जग में उसका नाम।

निज-निज कर्म करें सभी, पावें निज-फल-भोग;
होता है प्रारब्ध-बश, सब सुख-दुख का योग।

सुख-दुख पाते जगत-जन, सब स्वकर्म अनुसार;
अन्य न दोषी हो कभी, यही ज्ञान का सार।

बाल न बाँका हो कभी, यदि स्वकर्म अनुकूल;
दुख में विधि को कोसना, भारी-भीषण भूल।

जो जन जैसा जगत में, रखता निज व्यवहार;
वैसा बन जाता यहाँ, उसका सब संसार।

सुबुध स्वयम समझ सभी, है स्वकर्म का दोष;
इससे दुःख में वे करें, नहीं किसी पर रोष।

सुख-दुख जब जैसे मिले, करो उसे स्वीकार;
गुण-गुण गाओ सर्वदा, प्रभु के बारम्बार ॥

योग और सांख्य—

कितने ही हैं यहाँ पर, नर करता फल त्याग;
किन्तु कर्म करके बनें, सच्चे-साधक सिद्ध।

जब ज्ञानोत्तर कर्म का, नर करता फल त्याग;
सांख्य-योग से तब उसे, हो जाता अनुराग।

निर्मल करता वह हृदय, त्याग सभी छल-छन्द;
शांत-चित्त बनता अतः, पाता परमानन्द।

धर्म-अधर्म और अवतार का विवेचन—

जन-जन-जीवन सफल वह, करे निरन्तर कर्म;
अपनाए सब युक्ति-युत, 'शंकर' मानव-धर्म।

अन्य धर्म से धर्म निज, देता सिद्धि-सुयोग;
अतः सुजन हो दत्तचित्त, करते धर्म-प्रयोग ।

दृढ़ रह कर निज धर्म पर, पाले उसे सदैव;
मुक्ति परम पाता वही, बनता सिद्ध तथैव ।

जब अधर्म अन्याय का, बढ़ता अधिक समाज;
धर्म स्थापन का तभी, प्रभुवर सजते साज ।

नर-तन धर आते जगत, बाँधें सब श्रुति-सेतु;
जिससे मानव-धर्म पर, लगे न दानव-केतु ।

युग-युग यही प्रभाव था, यही अमर सन्देश;
धर्म-भावना दृढ़ किये, सुदृढ़ बनेगा देश ।

भक्ति-योग--

ब्रह्म, जीव, जग एक सब, जो जन जाने तथ्य;
प्राणी-मात्र से प्रेम कर, करें भक्ति वे सत्य ।

जन हित करते कर्म वे, यज्ञ और तप, दान;
परा भक्ति हित हृदय रख, परम-भाव का ज्ञान ।

राग-द्वेष तज साधना, करते हैं जो नित्य;
भाग्यशील देखें वही, प्रभु का रूप अनित्य ।

निषिद्ध कर्मों का सर्वथा त्याग--

जो जन जीवन सफल कर, यश चाहे संसार;
उन्हें चाहिए उर धरें, सुखद-ज्ञान का सार।

झूठ, कपट, हिंसा तथा, चोरी, छल, व्यभिचार;
—त्यागें, और करें नहीं, निज निषिद्ध व्यवहार।

यज्ञ, दान, तप, साधना, करे सदा निष्काम;
काम्य-कर्म के त्याग से, नर पा जाता नाम।

धन-वैभव, सन्तान-सुख, लोक-बड़ाई त्याग;
पाते यश जो जन करे, जन-जन से अनुराग।

स्वार्थ-सिद्धि सुख के लिए, द्रव्य-याचना छोड़;
सतत करें सद्कर्म को, धरें न धन को जोड़।

आलस और प्रमाद-वश, साधन-सुख-संयोग;
—तजे नहीं, तृष्णा तजें, तज फल-इच्छा-भोग।

ममता नश्वर-जगत की, पाप-पतन की मूल;
भ्रम-वश इस संसार में, कभी न भूले भूल।

विषय-भोग संसार के, अनरस अमम अनित्य;
विमुख रहे, उनसे, करे, प्रभु-आराधन नित्य।

सब विभूतियों में वही, व्याप्त शक्ति है एक;
रक्खे समता-भावना, दृढ़ कर विमल विवेक।

अहंकार तज, करें सब, सत्य सरल व्यवहार;
जिससे जन-जन कर सकें, सुखमय-शान्ति-प्रसार।

गीता से मिलता हमें, ऐसा दिव्यालोक;
जिससे बन जाते सफल, लोक और परलोक।

युग-युग यह देता सुखद, विश्व-शान्ति सन्देश;
सुखी रहें जिससे सभी, 'शंकर' देश-विदेश।

गीता-ज्ञान का निष्कर्ष--

जग-जन-जीवन में अधिक, विषमय, विषम-विषाद;
धर धीरज काटे उसे, रख कर निज मर्याद।

करे कर्म निष्काम हो, त्यागे फल-आसक्ति;
कालान्तर में तब उसे, मिल जाती प्रभु-शक्ति।

कर्म करे संलग्न हो, त्याग फलाशा-दृष्टि;
होती अपने आप तब, मोक्ष-प्राप्ति की सृष्टि।

इंद्रिय-निग्रह कर करे, जप, तप, संयम, यज्ञ;
जिससे साधक बन सके, रहे नहीं जड़-अज्ञ।

कर्म, अकर्म, विकर्म का, रक्खे विधिवत ज्ञान;
पाप-नाश करके करे, दूर सभी अज्ञान।

कर्म योग, संन्यास पर, कर गम्भीर-विचार;
अपनाये, पाये सुकृत, खुला मोक्ष का द्वार।

प्रभु--आराधन से कटें, काल और भव--फन्द;
मिटते उससे स्वतः ही, संसृति-क्रम-दुख-द्वंद्व ॥

कण-कण, क्षण-क्षण में सुलभ, ईश्वर-रूप-अनेक;
समझ सकें इसको वही, जिनमें जगे विवेक ।

ईश्वर को अर्पण करे, सकल कर्म-फल नित्य;
करे पार सानन्द फिर, यह संसार--अनित्य ।

विश्व-रूप भगवान का, समझ करें जो भक्ति;
दिन-दिन दूनी हो बढ़े, उनकी जग में शक्ति ।

निराकार--साकार का, करे न भेद-बिचार;
सतत साधना—लीन हो, स्वयम् इष्ट निर्धार ।

इच्छाएँ तज नर बने, जब कामना--विहीन;
त्यागे ममता, मोह, मद, हो सुशान्ति से लीन ।

भव सागर के पार-हित, ज्ञान यही शुभ-श्रेष्ठ;
जन-जन शाश्वत-शान्ति से, प्राप्त करें परमेष्ठ ।

वही सातवाँ-स्वर्ग है, वही बहिश्त—विशेष,
बौद्धों का निर्वाण वह, मुक्ति-ज्ञान-परिवेष ।

विजय-पराजय, वन-भवन, मान और अपमान;
समदर्शी ही मानते, सबको एक समान ।

युक्ति-शक्ति दोनों मिलें, जब जग में एकत्र;
सिद्धि, सफलता सब स्वयम्--आ जाते सर्वत्र ।

तृतीय खण्ड

बापू—जीवन-दर्शन (महात्मा गांधी—जीवन-दर्शन)

नव-युग के निर्माता राष्ट्र-पिता विश्व-बंद्य-बापू ने, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता—निवारण, शरीर—श्रम, सर्वधर्म समभाव और स्वदेशी रूपी एकादश—व्रतों के द्वारा समूचे राष्ट्र में नव-जागरण उत्पन्न करके राष्ट्र को स्वाधीन बनाया और विश्व को विलक्षण-क्रान्ति से परिचित कराया।

उनका सन्देश है कि प्रथम अपना चरित्र सुधारे पश्चात् सार्वजनिक सेवा या देश-सेवा करने में संलग्न हो।

—'शंकर'

बापू-जीवन-दर्शन- (महात्मा गांधी-जीवन-दर्शन)

विषय-प्रवेश--

राष्ट्र-पिता-बापू हुए, साधक, सिद्ध, सुजान;
दिया विश्व ने इसलिए, उनको उच्च स्थान।
नैतिक-बल देकर किया, सजग सकल संसार;
दास-प्रथा टूटी, हुआ, नव-जागरण-प्रसार।
अभयदान पाकर किया, सब ने ही उत्कर्ष;
जन—जन जागृत हो गए, झेल--झेल संघर्ष।
समझाया सद्भाव से, ऊँच-नीच का ज्ञान;
पाया जिससे विश्व में, मानवता ने मान।
कथनी--करनी एक कर, दिया सुखद--आदर्श;
विश्व--शान्ति--दायक बना, जिससे भारतवर्ष।
उनके अनुयायी बनें, समझ समझ सद्ज्ञान;
जन--जन जिससे पा सकें, विश्व-शान्ति, सम्मान।
सत्य, अहिंमाप्रद सुखद, उनका वाणी-मर्म;
जग-जन-जन सोचें तथा, अपनाएँ शुभ-कर्म।

चरित्र-गठन--

धन-वैभव से महत्तर, है आदर्श-चरित्र;
मिलती मुक्ति मनुष्य को, यदि वह रहे पवित्र।

जग-जन-जीवन धन्य हों, करे यहीं परितोष;
स्वयम् साधना से सधे, चारित्र्यक-संतोष ।

परहित-साधन में रहे, स्वार्थ-बुद्धि दे त्याग;
जीवन भर करता रहे, जन-जन से अनुराग ।

संयम-दृढ़ता हृदय रख, करे निरन्तर कर्म;
जिससे जन-जन हों सुखी, माने वह निजधर्म ।

रख चरित्र उज्जल सदा, करे कर्म निष्काम;
सफल स्वयम् साधक बने, पाकर सुख-विश्राम ।

सत्य—

सत्य स्वयम् त्रैलोक में, परमेश्वर का रूप;
कर्म-कसौटी कस सुबुध, समझें स्वयम् स्वरूप ।

मन, क्रम, वाणी एक कर, करें कर्म निर्द्वन्द्व;
सत्य साधना से बनें, वही सच्चिदानन्द ।

युग-युग साधक-वृन्द ने, जप-तप-संयम-भोग;
कठिन क्लेश काटे किए, किन्तु सत्य के योग ।

राम, कृष्ण, हरिचन्द्रनृप, गौतम-बुद्ध-प्रबुद्ध;
सत्य-शोध में दुख सहे, है यह जगत प्रसिद्ध ।

विश्व-वंद्य-बापू किया, सरल, मार्ग-संकीर्ण;
सत्य-साधना-शान्तिप्रद, बनी विश्व-विस्तीर्ण ।

वसुधा घर माना तथा, प्राणि-मात्र को मित्र;
बापू ने सत्पथ दिया, रख कर भाव पवित्र।

अहिंसा—

साधक संकट सहन कर, हो आनन्द-विभोर;
सत्य-शान्ति-साधन लिये, बढ़े लक्ष्य की ओर।

राग-द्वेष, मिथ्या तथा, असद-भावना-भ्रष्ट;
उतावली, हिंसा दुखद, त्यागे कार्य निकृष्ट।

साधन माने अहिंसा, और सत्य है साध्य;
एक दूसरे के बिना, बनती शोध असाध्य।

साधन अपने हाथ है, कर करके उद्योग;
सतत साधना लीन हो, साधक साधे योग।

साधन द्वारा जगत में, मिलता ईश्वर साध्य;
मान अहिंसा धर्म निज, लेखे कुछ न असाध्य।

सत्य, अहिंसा से सुलभ, दुस्तर-कार्य अनेक;
स्वयम् सिद्ध हों यदि हृदय, जागृत विशद-विवेक।

मान अहिंसा धर्म निज, हिंसा समझे पाप;
पाता तब जग सफलता, साधक अपने आप।

बापू ने इस ज्ञान से, जीता भीषण-युद्ध;
पथ-प्रशस्त पावन किया, विश्वशान्ति का युद्ध।

अपरिग्रह—

बसुधा-माता एक हैं, सब उसकी सन्तान;
विश्व बड़ा परिवार निज, रक्खें इसका ध्यान।

स्वयम् जियो पर और को, जीने दो निर्द्वन्द्व;
जिससे जग-जीवन बने, सरस, सरल स्वच्छन्द।

मानो मानव मात्र को. स्वजन तथा निज मित्र;
सबकी हित-चिंता करो, रख कर भाव पवित्र।

धनी सुखी हैं, देख यह, करो न निज मन खिन्न;
उद्योगी बन कर सभी, करो कार्य अविच्छिन्न।

धनियों का यह धर्म है, देकर निज सहयोग;
उद्योगों से देश-दुख, हरें दीनता-रोग।

श्रेयस्कर-श्रम से स्वयम्, करें अथ उत्पन्न;
जिससे जन-जन हों सुखी, बने राष्ट्र सम्पन्न।

लेना लेना ही नहीं, सीखें देना दान;
जिससे जग में मिल सके, उचित मान-सम्मान।

आवश्यकता से अधिक, रखते जो धन—जोड़;
वे विपत्तियाँ स्वयम् ही, न्योतें लाख-करोड़।

धन-तृष्णा-उन्माद-मद, करे पाप उत्पन्न;
सदुपयोग उसका करें, जो जन मति-सम्पन्न।

धोखा, चोरी, दम्भ-दुख, बढ़ जाते उस देश;
जिसमें धन-लौलुप सदा, साधें निज उद्देश्य।

द्रव्य-दोष-दुरुपयोग से, करें न घोर अनर्थ;
द्रव्य-दान देकर बनें, साधक, सिद्ध-समर्थ।

अपरिग्रही-सद्भावना, जागृत करें सयत्न;
जिससे जग-जीवन बनें, सफल-साधना-रत्न।

स्वदेशी—

वस्त्र विदेशी बने थे, सचमुच शत्रु समान;
बापू ने सबसे प्रथम, किया उसी का ज्ञान।

बहिष्कार सबका किया, कर कर के एकत्र;
होली-सी उनकी जली, यत्र-तत्र, सर्वत्र।

लिया स्वदेशी-व्रत तभी, कर खादी बिस्तार;
चरखा का घर-घर हुआ, प्रतिभा—पूर्ण-प्रसार।

चक्र—सुदर्शन-सा चला, चरखा भर-भर ओज;
देख-देख जग-जन जगे, विकसे हृदय-सरोज।

नौकरशाही ने चली, गुप्त-नीति-दमनीय;
जिससे जन-जन हो गए, और अधिक दयनीय।

विकल बने विव्हल हुए, जन-साधारण व्यक्ति;
बापू ने तब युक्ति से, उनको दी नव-शक्ति।

अर्थ-व्यवस्था में हुआ, आंशिक तभी सुधार;
युक्ति-शक्ति की कह उठे, जन-जन जय-जयकार।

एटम-बम-सा बन चला, चक्र-सुदर्शन-अस्त्र;
जिसका दमन न कर सके, बड़ी शक्ति के शस्त्र।

हरिजनोद्धार—

छुआछूत के भूत को, किया दूर कर यत्न;
निरख-परख, कस कर धरे, धूल-धूसरित-रत्न।

सब अछूत हरिजन हुए, हृदय भरा उल्लास;
बापू ने उनसे किया, दूर दीन-दुख-त्रास।

हरि मंदिर उनको खुले, उन्नति के सब द्वार;
दिन-दिन दूने वे बढ़े, कर-कर आत्म-सुधार।

कह हरिजन उनको दिया, यथा-योग्य सम्मान;
जिससे हुई समाज की, संघ-शक्ति बलवान।

उनकी उन्नति से हुई, जग में जय-जयकार;
गाये गुण-गण विश्व ने, भर कर मोद-अपार।

बापू ने यद्यपि सहे, कितने ही संघर्ष;
किन्तु दिया हरिजनों को, दिन दूना उत्कर्ष।

युग-युग यहाँ सुकीर्ति को, अमर किया हो धन्य;
विश्व-वंद्य उन सा कहाँ, युग-निर्माता अन्य।

रक्तपात के बिना ही, किया देश स्वाधीन;
हुई प्रशंसित विश्व में, उनकी क्रान्ति-नवीन।

घुटने टेके ब्रिटिश ने, मानी हार निदान;
समझ सका सब विश्व तब, बापू का गुरु-ज्ञान।

शारीरिक-श्रम—

शारीरिक-श्रम को सदा, उनने दिया महत्व;
करतल गत उनको रहा, गीता-ज्ञान-गुरुत्व।

श्रम करके खाना उचित, है गीता* का ज्ञान;
बिना किए श्रम, बिलसता, है वह चोर समान।

यज्ञ-शेष के अन्न से, जो करते प्रतिपाल;
जीवन सार्थक करें वे, बनते बुद्धि-विशाल।

शारीरिक-श्रम स्वास्थ्य हित, है साधारण योग;
स्वस्थ रहें, जो नियम से, करते हैं उपयोग।

अनुभव-वृद्ध-विवेक से, दे कर परम महत्व;
अपनाया, सबको दिया, बापू ने गुरु-तत्व।

---

* श्रीमद्‌भगद्‌गीता के चौथे अध्याय के ३१ वें श्लोक में उल्लेख है :—

नायं लोकोऽसत्य यज्ञस्य कुतोऽयः कुरुसत्तम ॥

अर्थात् जो यज्ञ-शेष खायेगा, वह पुण्य-दान है। अन्यथा वह चोर है। सबको भोजन करा देने के पश्चात् स्वयम् भोजन करे यह भाव है।

सेवा—

निज आचरण सुधार सब, बन कर कर्मठ-वीर;
जन-सेवा के क्षेत्र वे, आएँ जो मति-धीर।

स्वार्थ-साध सेवा करें, करते घोर-अनर्थ;
अपयश पाते अन्त वे, उनकी सेवा व्यर्थ।

सेवा कर जो समझते, किया अधिक उपकार;
उनको यश मिलता नहीं, हो सेवा निस्सार।

दीन-दुखी-दुख दूर कर, करे निरन्तर कर्म;
श्रेयस्कर बनता स्वयम्, उसका सेवा-धर्म।

सब में समता-भाव रख, करे कर्म अविराम;
जन-सेवा से लोक-प्रिय, होता उसका नाम।

सेवा-साधन-सुखद-व्रत, यदि हो वह निष्काम;
शान्ति, सफलता साथ ही, देता शुभ-परिणाम।

साधना—

जन-बल-महिमा समझ कर, सब साधें सम्पर्क;
सिद्धि साधना से सुलभ, नहीं किए जग-तर्क।

करें आचरण शुद्ध निज, राग-द्वेष को त्याग;
स्वाभाविक सबसे करें, शुद्ध, शान्त अनुराग।

पर दारा पूज्या सदा, माता-सी कर भक्ति;
उनके हित अर्पण करे, सेवा-साधन-शक्ति।

तुच्छ मृत्तिका मान कर, पर धन समझे त्याज्य;
होगा जन-जन को तभी, सुख-कर अपना राज्य।

संघर्षों को पार कर, करे कर्म निष्काम;
सफल साधना से स्वयम्, हो जाते सब काम।

सतत साधना लीन हो, बने विश्व-शिर-मौर;
बापू-सा मिलता कहाँ, कोई साधक और।

प्रार्थना--

अपनी आंतरिक आस्था, प्रतिदिन संध्या-भोर;
प्रभु समक्ष रखता रहे, कर बिनती कर जोर।

अपने-अपने इष्ट पर, दृढ़ता से रख भक्ति;
नियमित कर आराधना, माँगे प्रभु से शक्ति।

जग-जीवन जिससे बने, सार्थक, जाय न व्यर्थ;
विनय कीजिए दीन बन, प्रभु को मान समर्थ।

प्रभुकण-कण में रम रहे, निराधार-आधार;
भक्ति-भाव भर बनें जग, निराकार-साकार।

अधमोधम को शरण दे, कर देते उद्धार;
'नेति नेति' कह थके सब, प्रभु की शक्ति अपार।

सफल-प्रार्थना से सदा, मिलता परमानन्द;
स्वयम् आत्मा पुष्ट हो. त्याग जगत—छम-छन्द ।

विश्व-क्रान्ति करके किया, भारत को स्वाधीन;
जीवन जन-जन को दिया, देकर शक्ति-नवीन ।

किया अछूतोद्धार से, स्वच्छ समाज-विकास;
जागृत किया स्वदेश को, देकर नया प्रकाश ।

दूर किए सद्ज्ञान दे, दुखद-भाव-संकीर्ण;
दिया शान्ति-प्रद एक सा, पावन-पथ-प्रस्तीर्ण ।

दया, प्रेम, सद्भावना, रख कर करे सुकर्म;
सफल बने जिससे जगत, सबका मानव-धर्म ।

सिखलाया सुख-शान्ति का, करना सद्व्यवहार;
जिससे जग-जन पा गए, विश्व-प्रेम का सार ।

नई प्रेरणा प्राप्त कर, हुए भक्त एकत्र;
रघुपति राजाराम की, गूँजी ध्वनि सर्वत्र ।

दम्भी, द्वेषी, दुष्टजन, करते तर्क कुतर्क;
वे असाधु करते नहीं, सुजन-साधु-सम्पर्क ।

जो ईश्वर मानें नहीं, करते घोर-अनर्थ;
उनका जाता है यहाँ, जग-जन-जीवन व्यर्थ ।

कहें अनीश्वरवाद के, मनगढंत-आख्यान;
वे अशान्त-जन जगत में, पा न सकें कल्याण ।

संध्या-प्रात प्रार्थना, प्रतिदिन करना धर्म;
बापू ने करके स्वयम्, सिखलाया शुभ-कर्म।

सफल-प्रार्थना से मिले, मन को शान्ति, सुदृष्टि;
जग-जड़ता जिससे कटे, पाए पथ-परिपुष्टि।

लोक और परलोक भी, दोनों होते सिद्ध;
सदा शान्ति-प्रद सुखद है प्रभु-पद-पद्म-प्रसिद्ध।

प्रचलित कर प्रभु-प्रार्थना, कर उसका विस्तार;
बापू ने जग में किया, ईश्वर-ज्ञान-प्रसार।

हुआ अनीश्वरवाद का, अपने आप अभाव;
अमर रहेंगे विश्व में, बापू के सद्भाव।

चतुर्थ–खण्ड

विनोबाभावे–जीवन-दर्शन

(युगपुरुष आचार्य विनोबा भावे)

"आत्मा शान्त-स्वरूप है। शान्ति के लिए न चाहिए संघटना न चाहिए विघटना, उसके लिए चाहिए देह-भिन्न व्यापक अन्तरात्मा का गान, निर्मल चित्त और संयम-शीलता।

शरीर मुझे सौंपा हुआ है; लेकिन मेरा नहीं है, मेरे लिए नहीं है। समाज का है, समाज के लिए है। सृष्टि का है, सृष्टि के लिए है। फिर तेरा क्या है ?

सारा समाज और सारी सृष्टि मेरी है। यह है जागतिक शान्ति की योजना।"

—आचार्य विनोबा भावे

विश्व-प्रेम से ही सुलभ, संघ-शक्ति एकत्र;
सिद्धि स्वयम् संभव तभी, यत्र, तत्र, सर्वत्र।

—शंकर

अपरिग्रह—

बापू ने जिसको स्वयम्, माना संत विशेष;
उसी विनोबा ने दिया, अपरिग्रह सन्देश ।

भूदान—

कर दिखलाई शान्ति से, बापू-वाणी सिद्ध;
भूदानी नेता हुए, जग में परम प्रसिद्ध ।

पद-यात्रा का श्रीगणेश—

*पोचमपल्ली से चला, उनका पुण्य-प्रवाह;
अनुगामी बन कर चले, जन-जन उनकी राह ।

रामचन्द्ररेड्डी रहे, अपने गाँव नगण्य;
सौ एकड़ दे भूमि वे, बने यशस्वी धन्य ।

चौदह-वर्षों में किया, उन ने अद्भुत-काम;
दिव्य-दृष्टि दे देश को, पाया शुभ-परिणाम ।

सामंजस्य-सनेह-सुख, सरस, सरल सद्भाव;
मानव-मानव में जगे, प्रांजल-पुण्य-प्रभाव ।

*हैदराबाद प्रदेश के तैलंगाना जिले के पोचमपल्ली गाँव में हरिजनों ने विनोबा से भूमि माँगी, विनोबा की अपील पर रामचन्द्ररेड्डी ने १८ अप्रैल सन् १९५१ ई० को अपनी सौ एकड़ भूमि भूमि-दान में दे दी । इस सफलता को विनोबा ने ईश्वरीय-संकेत माना और तब से अब तक वे उत्तरोत्तर पद-यात्रा करके भरपूर सफलता पाते जा रहे हैं ।

जन-जीवन जागृत हुआ, उर-उर उठी उड़ान;
मन-मन में मिश्रित बना, उनका वह अभियान।

ग्राम-दान, धन-दान दे, भूमि-दान दे नित्य;
जन-जन ने माना यही, है उपयोगी कृत्य।

प्रेम प्रपूरित पंथ पर, चल कर करें विकास,
धनी-दीन हिलमिल करें, प्रमुदितपूर्ण प्रयास।

स्वार्थ-साधना से सभी, रहें दूर भरपूर;
सब समानता, शान्ति के, बनें समर्थक-शूर।

सम्यक-वितरण शान्ति-प्रद, सुखमय सभ्य समाज;
राम-राज्य रमणीयता, आये अविकल आज।

परम-प्रेम आधार ले, सर्वोदय सद् लक्ष्य;
जन-जन को, कल्याणहित, दिया शान्त-प्रद तथ्य।

सबै भूमि गोपाल की—

'सबै भूमि गोपाल की, समझे इसका मर्म;
उसे धरोहर मान कर, पा लें अपना धर्म।

स्वामी सब ही भूमि के, एक त्रिलोकीनाथ;
रक्खें यह उर-भावना, सब श्रद्धा के साथ।

हम सब बाल-गोपाल हैं, पिता वही प्रभु एक;
अपने हृदयों में यही, जागृत करें विवेक।

भाई-चारे से रहें, मान बड़ा परिवार;
बाँटें हिलमिल हर्षयुत, भाई-भाई-भार।

राग-द्वष, दुख, दम्भ सब, हों समाज से दूर;
सहयोगी हो रहें सब, पा लें सुख भरपूर।

सर्वोदय—(सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय)

श्रमिक, कृषक, हरिजन तथा, जग-जन-जन हो तुष्ट;
तब समाज सुख कर बने, सर्वोदय संतुष्ट।

'राज-सूय' विख्यात है, 'भारत' का शुभ-यज्ञ;
अखिल विश्व-व्यापी बना, सर्वोदय-जन-यज्ञ।

'प्रजा-सूयता-यज्ञ' ही, है सर्वोदय आज;
जिसके द्वारा बनेगा, सुखमय शिष्ट समाज।

आर्थिक-समानता—

धनिक अधिक धन-मद छके, भोगे भोग-विलास,
दलित-दीन दुख मे दुखी, भोग रहे जग-त्रास।

यह अनुचित असमानता, भरती भाव जघन्य,
धनी सुखी हों किन्तु जग, दुखी न होवें अन्य।

यह सभव तब, जब जगत, रख सहयोगी दृष्टि;
हिल मिल कर दोनों रहैं, करें सुमति-सुख सृष्टि।

यही लक्ष्य लेकर चले, बिदित विनोबा वीर;
पद-यात्रा कर कर भरे, भले-भाव-गंभीर।

भूमि-ग्राम-धन-दान ले, दिया दान सर्वस्व,
निधन-बर्ग जिससे उठा, पा आंशिक अस्तित्व।

विषमता और वर्ग-भेद का अन्त हो—

विकट-विषमता-विषमयी, वर्ग-भेद-व्यापार;
भर-भर भाव अशिष्टतर, देता कष्ट अपार।

उसका सभ्य समाज से, हो जाए अब अन्त;
पावन प्रण पर अडिग रह, चला विनोबा सन्त।

बसुधैव कुटुम्बकम् की भावनाएँ जागें—

बसुधा माता जगत की, सब उसकी सन्तान;
भाई-चारा रख करें, सबको नेह प्रदान।

मानव-मानव मिल करें, स्वजनों-सा अनुराग;
प्रेम परस्पर प्राप्त कर, दम्भ-द्वेष दें त्याग।

विस्तृत विश्व विशाल में, प्रिय परिचित परिवार;
सब सुख से जीवित रहें, सफल करें संसार।

भव्य भावनाएँ भरें, उर-उर उठे उमंग;
जिससे जागे ज्योति-नव, प्रेम-भाव के संग।

भूदान से विश्व-कल्याण—

सहयोगी बन कर रहें, राग-द्वेष दें त्याग;
एक दूसरे से सभी, करें अधिक अनुराग।

दीन-दासता-दुःख सब, हों समाज से दूर;
सब समानता से जगत, पाएँ सुख भरपूर।

मानव-मानव मित्र हों, हिल मिल रचें विधान;
जिससे जग-जन पा सकें, सुख, समृद्धि सम्मान।

छूआछूत मिट कर हटें, ऊँच-नीच के भाव;
जिससे दिन-दिन बढ सके, सबमें प्रेम-प्रभाव।

यह ऐसी आयोजना, जग-जन पाएँ त्राण;
सर्वोदय से विश्व में, हो मानव-कल्याण।

विश्व-शान्ति का यज्ञ : सर्वोदय—

विश्व-शान्ति का यज्ञ है, सर्वोदय सुखधाम;
जिससे जग-जन पा रहे, दिन-दिन शुभ परिणाम।

नब्बे प्रतिशत दीन हैं, कर उनका सु सुधार;
उचित यही उनका करें, सब सुखमय संसार।

तभी यज्ञ यह सफल हो, मिटे भेद, उपभेद;
धनिक-वर्ग यदि योग दे, करें दूर मत-भेद।

विश्व-प्रेम से ही सुलभ, संघ-शक्ति एकत्र;
सिद्धि स्वयम् संभव तभी, यत्र, तत्र, सर्वत्र ॥

अतः उचित है सब करें, सर्वोदय बिस्तार;
विश्व-शान्ति का हो सके, जिससे पूर्ण-प्रसार ॥

प्रार्थना—

करके प्रतिदिन प्रार्थना, पाए प्रभु की भक्ति;
जिससे आए शान्ति-प्रद, सहनशीलता शक्ति ॥

ईश्वर-श्रद्धा शान्ति-प्रद, रख कर दृढ़ विश्वास,
भक्ति-भाव-भूषित सुजन, करते स्वयम् विकास ॥

जीवन में जो चाहता, अन्तिम शुभ परिणाम;
उसे चाहिए वह करे, सदा कर्म-निष्काम ॥

दूर दीन-दुख करे सब, कर उनका उत्कर्ष,
शान्ति प्राप्त करता रहे, भोग-भोग संघर्ष ॥

किन्तु सुयश उसका सदा, करे ईश्वराधीन;
जग-जन-जन यह समझ लें, मर्म सुखद प्राचीन ।

त्याग, अपरिग्रह, साधना, संयम-नियम कठोर;
पालन करके युक्ति युक्त, बढ़े लक्ष्य की ओर ।

प्रभु-आराधन से स्वयम्, बनती बुद्धि विशुद्ध;
बने सिद्ध, साधक सदा, पावन चरम प्रबुद्ध ।

परोपकार करके कभी, करे नहीं फल-आस;
श्रेयस्कर होतें तभी, उसके सफ़ल प्रयास।

कर्त्ता - धर्त्ता विश्व के, वही एक सर्वज्ञ;
भक्ति-भाव रख कर यही, करे प्रार्थना-यज्ञ।

पंचम खण्ड

भावना-भूषित-भारतवर्ष [स्वराष्ट्र-संबर्द्धन]

जिस रोज प्रत्येक भारतीय अपने उद्धार में लग जाएगा, भारतवर्ष के उद्धार का मार्ग अपने आप खुल जाएगा।

—राष्ट्रपिता विश्वबंद्य बापू

रक्षित रखते राष्ट्र को, कृषि, कृपाण, कवि-कर्म;
धन्य राष्ट्र, जन-जन जहाँ, प्रतिपालें निज धर्म।

—'शंकर'

विषय-प्रवेश—

सात - द्वीप हैं, मानती, पौराणिक - परिशिष्ट;
उन सबमें माना गया, जंबू - द्वीप - विशिष्ट।
इसी द्वीप में देश निज, भारतवर्ष - प्रधान;
गाए जिसके विश्व ने, गुण - गण - गौरव - गान।
जल - धारा जिसकी जगत, वन्दनीय विख्यात;
देते सदा सुधा सलिल, पावन प्रचुर प्रपात।
हिमगिरि, विन्ध्य-समूह सब, युग-युग यहाँ यथेष्ठ;
रह रक्षक रहते अड़े, खड़े वीर बन श्रेष्ठ।
धरा - उर्वरा अन्न से, भर - भर कर - भण्डार;
पालै, पोषै पुत्र - वत, दे - दे कर निज प्यार।
विस्तृत वन - वैभव विषद, हरे रोग - दुख - शोक;
स्वास्थ्य-सरसता, शान्ति, सुख, देता दिव्यालोक।

उत्तर में काश्मीर—

भारत - भूषण भव्य है, कान्ति - कलित - कश्मीर;
वर्ष - वर्ष बहती वहाँ, सुरभित - सुखद - समीर।
प्रकृति-प्रिया पुष्पित करे, वन-वन-बाग-तड़ाग;
मन-मन में मृदुता भरे, परिमल - पुष्प - पराग।
पूर्ण - पर्यटन - प्रभापद, भर - भर अधिक उमंग;
परिपूरण प्रमुदित करें, सुजन, सनेही - संग।

वर्ष - वर्ष वितरण करे, स्वास्थ्य - सुधा संभाग;
जिससे पाते परियटक, अधिक - अधिक अनुराग।

भारत उसको मानता, अपना अंग अभिन्न;
कर सकता कोई नहीं, उसको उससे छिन्न।

उस पर हम निश दिन करें, भरसक भारी भक्ति;
उसको विलग न कर सके, जग की कोई शक्ति।

दक्षिण में कन्या-कुमारी—

भारत के पद-पद्म को, सागर सौ-सौ बार;
धन्य मानता भाग्य को, प्रतिदिन पाँव पखार।

अन्तरोय अंचल अचल, अति अगम्य अभिराम;
दक्षिण-तटवर्ती किया, तीर्थ रूप श्रीराम।

पूर्व में पुरी—

जगन्नाथ की पुरी में, जगन्नाथ-भगवान;
—स्वयम् बिराजे, इसलिए, मिला उसे सम्मान।

ब्रह्मा विरुद बखान कर, राम राम रट रुद्र;
पाँव पखार-पखार कर, बनता धन्य समुद्र।

पश्चिम में गाँधी-धाम—

बसे कृष्ण जग द्वारिका, बनी पीठ वह सिद्ध;
पश्चिम-तट-वर्ती हुआ, गाँधी-धाम प्रसिद्ध।

पंजाब प्रदेश---

सरिताएँ भरँ सरसता, करें जिसे सरबोर,
अन्न-प्रचुरता जहाँ पर, होती है हर ओर।
परिग्रही हो कर रहे, किया देश का काम;
अमर हुए हैं विश्व में, वे श्री स्वामी राम।
वीर-बाँकुड़े विश्व में, बने प्रशंसित धन्य;
उस पंजाब-प्रदेश-सा, कहाँ दूसरा अन्य।

राजस्थान-प्रदेश—

राणा महाप्रताप ने, दिया जिसे सम्मान;
तीर्थ रूप सब को हुआ, पूरा राजस्थान।
द्रव्य-राशि सब देश हित, अर्पण कर सोत्साह;
अमर कीत्ति ले कर गये, दाता भामाशाह।

गुजरात-प्रदेश—

दयानन्द से ऋषि-प्रवर, बापू से गुणधाम;
जिस प्रदेश में हुए हैं, उसको सतत प्रणाम।
उनकी करुणा कृपा से, हुआ देश उद्धार;
युग-युग उनके ऋणी हम, है सबको स्वीकार।

महाराष्ट्र—

वीर शिवा की वीरता, गूंजी देश, विदेश;
महाराष्ट्र है आज भी, पानीदार-प्रदेश।

मद्रास—

कामराज नाडर तथा, राजाजी से रत्न;
कीर्त्ति कौमुदी कर रहे, उज्ज्वल सतत सयत्न।

मध्य-प्रदेश—

कालिदास कविरत्न की, प्रगटी प्रभा पुनीत;
उसको प्रचलित किया नृप, बनकर परम विनीत।

वीर बली विक्रम तथा, भारत-भूषण भोज;
हुए प्रशंसित विश्व में, दे वाणी को ओज।

जग-जन-जन हित हो रहे, मध्यदेश के काम,
जिससे जग जाहिर हुआ, इस प्रदेश का नाम।

बिहार—

प्रथम राष्ट्रपति का जिसे, मिला स्वयम् सम्मान;
श्री राजेन्द्रप्रसाद से, बढ़ा उसी को मान।

बंगाल—

प्रगटीं पुण्य-प्रभामयी, जिसमें शक्ति महान;
उस प्रदेश का जग करे, गुण-गण-गौरव-गान।

रामकृष्ण, बंकिम, शरद, स्वामि विवेकानन्द;
हुए कवीन्द्र रवीन्द्र से, विश्व-सुकवि-स्वच्छंद।

विन्ध्य-प्रदेश——

भारत-उर, जग में बिदित, विस्तृत विन्ध्य प्रदेश;
बिगड़े बन बन कर बने, युग-युग इसके वेष।

सुकवि, वीरवर जन्म ले, रहे यहाँ मतिरास;
मित्र मिश्र जिसमें हुए, तुलसी, केशव व्यास।

लक्ष्मीबाई ने किया, स्वतंत्रता-संग्राम;
जिससे झाँसी का हुआ, अमर विश्व में नाम।

उत्तर-प्रदेश——

गंगा-यमुना-सरस्वती, बनी त्रिवेणी-रूप;
पुजती युग-युग से यहाँ, होकर तीर्थ-स्वरूप।

वन-वैभव विस्तृत बृहद, फैले चारों ओर;
जिससे जन-जन के हृदय, रहते आत्म विभोर।

अन्य प्रदेश——

आन्ध्र, असम, केरल तथा, सुन्दरतम मैसूर;
है प्रदेश निज निज लिए, सब शोभा भरपूर।

राष्ट्र के प्रति——

एक बनें सब त्याग कर, हम अपने मतभेद;
ब्यर्थ बढ़ायें अब नहीं, वर्ग-भेद-बिच्छेद।

उत्तर-दक्षिण भेद को, दें न तूल-बिस्तार;
राष्ट्र एक अपना सभी, रक्खें सुदृढ़-बिचार।

राष्ट्र-भाषा के प्रति—

भाषा अपने देश की, हुई हिन्दी स्वीकार,
उसको उन्नत कर करें, उसका पूर्ण प्रसार।

विकास-आयोजनाओं के प्रति—

बनीं बिबिध आयोजना, निज विकास के अर्थ;
राष्ट्र बनेगा समुन्नत, उनसे अधिक समर्थ।
देकर निज-निज योग सब, करें निरन्तर-कर्म,
जिससे जन-जन सुखी हो, सधे राष्ट्र के धर्म।

राष्ट्र का आदर्श—

सत्य, अहिंसा, शान्ति का, रख कर निज दृढ़ लक्ष्य,
हम स्वदेश-हित सर्वदा, करें प्रदर्शित तथ्य।
अखिल विश्व विस्तृत बृहद, है अपना परिवार;
युग-युग यह आदर्श रख, करें प्रेम-व्यवहार।
मानव-मानव मित्र बन, करें लोक-कल्याण,
जिससे जग-जन पा सकें, नवस्फूर्ति नव-प्राण।
रहा, रहेगा सभी से, प्रेम-पूर्ण-व्यवहार;
जिससे सुस्थिर शान्ति हो, सुखी बने संसार।

वर्ग सभी सुख से रहें, श्रम कर भोगें भोग;
करें दूर दुःख-दीनता, हिल मिल कर उद्योग।

जन-जन जग में जिएँ सब, कर सुशान्ति विस्तार;
जीने में सुख मिले तब यही नीति का सार।

रहें धर्म-निरपेक्ष सब, उन्नत बने समाज;
विश्व बिदित बन कर रहे, राम राज्य-सा राज।

जय किसान, जय जवान—

रक्षित रखते राष्ट्र को, कृषि, कृपाण, कवि-कर्म;
धन्य राष्ट्र, जन-जन जहाँ, प्रतिपालें निज धर्म।

कृषि जय किसान—

रहें, साधना-श्रम सहित, कृषक कष्ट दिन-रात;
उनको एक समान हैं, ग्रीष्म, शीत, बरसात।

कर करुवा, कोपीन कटि, परिमित पट-परिधान,
—पहिन-पहिन प्रमुदित रहें, कर्मठ, कुशल किसान।

करते कृषि के कार्य सब, वे साधक अविराम;
विकट शीत या घाम हो, उन्हें कहाँ विश्राम।

भर-भर भरते अन्न से, घर-घर के भण्डार;
वही बढ़ाते विविध विधि, विशद विश्व-व्यापार।

उन्हें अन्नदाता कहें, जन-जन देते मान;
सचमुच हैं वे राष्ट्र के, मेरु-दण्ड बलवान।
युग-युग से उनके ऋणी, भारतीय भरपूर,
सुविधा, सुख सब दे उन्हें, किए कष्ट कब दूर ?
उनका आभारी अधिक, अपना सकल समाज;
वही बना सकते विशद, रामराज्य-सा राज।
निज नेता ने दृष्टि दे, दिया उन्हें सम्मान;
'जय किसान' नारा कहा, कर किसान-गुण-गान।

कृपाण जयजवान

वीर-बली वे बाँकुड़े, थे स्वदेश के प्राण;
जो जग जूझे जगत-हित, लेकर-कुशल कृपाण।
शूर शिवा-से साहसी, छत्रसाल-से वीर;
प्रगटे युग-युग देश में, शूरवीर, रणधीर।
प्राण हथेली पर लिए, किए शौर्य के काम,
जिससे उनका हो गया, अमर विश्व में नाम।
शत्रु-सैन्य संहार कर, बन विश्व-वर-वीर,
हुई अमर उनकी विशद, गुण-गाथा-गभीर।
अस्त्र-शस्त्र, रिपु-टैंक भी, उनने किए विनाश;
भा॰तीय-वी.रत्व का, उज्ज्वल किया प्रकाश।

हुआ प्रशंसित विश्व में, पावन प्रबल प्रयास;
उनके कौशल की कथा, बनी स्वयम् इतिहास।

वे इतिहास-प्रसिद्ध हो, पाए उच्च-स्थान;
जग-जन-जन उनका करे, गुण-गण-गौरव-गान।

युग-युग वीरों ने किया, भारत-भाल विशाल;
परम्परा पावन परम, रही, रहे सब काल।

निज नेता ने उचित ही, 'जयजवान' कर घोष;
उन पर गर्व किया, दिया, जन-जन को संतोष।

कवि-कर्म (जय साहित्यकार)

वेदव्यास-वाणी विशद, भरती विमल विकास;
विश्व-वंद्य जिससे मिला, भारत का इतिहास।

युग-युग कवियों ने विविध, रचे यहाँ सद् ग्रंथ;
जिनसे जन-जनको मिले, सानुकूल सद् पथ।

पाक-चीन के युद्ध पर, कवियों ने सोत्साह;
जागृत जन-जन को किया, कह-कह काव्य-प्रवाह।

पाकिस्तानी किस तरह, करके विफल प्रयास;
भारत से हो युद्ध-रत, पाए, जग-उपहास।

ताशकन्द की सन्धि तब, करके अंगीकार;
मित्र बने, आगे बढ़े, तजे नहीं कुविचार।

उधरे पाकिस्तान के, रचे गए छल-छन्द;
जिनसे जन-जन पा रहे, यहाँ, वहाँ दुख-द्वन्द।

अपना ओज निखार कर, कर वाणी विस्तार;
सत्य तथ्य तब स्वयम् सब, कवि ने किया प्रसार।

सेवा से साधक परम, पाएँ प्रचुर महत्व;
सुबुध समझते श्रेष्ठतम, त्याग, तपस्या तत्व।

प्रति-पालन सबने किया, अपना-अपना धर्म;
'शंकर' भारत-विजय का, यही मार्मिक-मर्म।

षष्टम—खण्ड

(प्राचीन-पर्व) .... (भारतीय-पर्व)

भारतीय-प्राचीन पर्व, हमारी संस्कृति के रक्षक और पोषक हैं, उनसे जन-जन प्रेरणा, उमंग और उत्साह प्राप्त करते हैं।

'शंकर'

प्राणि-मात्र से प्रेम कर, लें प्रभु से वरदान;
जिससे जग-जन शान्ति-प्रिय, हों, पाएँ कल्याण।

'शंकर'

चैत्र मास

सम्वतसरारम्भ—

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को, ब्रह्मा ने रच श्रृष्टि;
दी मानव को महत्तर, श्रेयस्कर नवदृष्टि।

इस दिन आवश्यक यही, पूजा-रचा महर्ष;
ब्रह्मा युत निज इष्ट की, करें सभी प्रतिवर्ष।

प्राणिमात्र से प्रेम कर, लें प्रभु से वरदान,
जिससे जग-जन शान्ति-प्रिय, हो, पाएँ कल्याण।

तिलक-व्रत—

तिलक लगाएं नियम से, मलयागिर घिस नित्य;
विधिवत पूजा के किए, हों प्रसन्न आदित्य।

देता है चन्दन-तिलक, पावन-प्रेम-प्रभाव;
रोग-शोक हर उर भरे, भक्त-भावना-भाव।

प्रपादान (प्याऊ रखवाना)

जो जन जग पुरुषार्थी, तज कर व्यर्थ विकल्प;
पितृ-शान्ति-हित करें सब, प्रपादान-संकल्प।

चार मास भर ग्रीष्म के, शीतल-जल सस्नेह;
प्याऊ पर पाते रहें, सब ही निस्संदेह।

पितृ-शान्ति का पुण्य ले, वे करते शुभ काम;
इससे अपने आप ही, वे पाते यश, नाम।

आरोग्य प्रतिपद-व्रत — (स्वास्थ्य-हेतु सूर्य-व्रत)

सभी अमावस्या रहें, जो मासिक उपवास;
प्रथम प्रतिपदा पर करे, विधिवत दीप-प्रकास।

बना अष्ट दल-कमल को, करें यज्ञ-निर्माण;
श्वेत-वस्तुएँ भेंट कर, पूजें सूर्य महान।

दीर्घ-आयु पा कर यहाँ, भोगें वे फल-भोग;
सफल स्वयम् सब हों जगत, उनके जन-उद्योग।

विद्या-प्रतिपद्-व्रत (विद्या-वृद्धि के लिए)

शुक्ल प्रतिपदा को करें, विद्या-व्रत प्रतिवर्ष;
बारह वर्षों में उन्हें, मिलता परमोत्कर्ष।

नव-रात्र-व्रत (दुर्गा-पूजा)

ब्रह्मचर्य पालें करें, आठ-दिवस उपवास;
भूमिशयन कर कर करें, प्रज्वलित पूर्ण प्रकास।

दुर्गा देती दिव्य-गुण, सहन शीलता शक्ति;
साधक साधन से करें, भव्य-भावना भक्ति।

नव-दुर्गा-व्रत का विशद, गाया गया महात्म्य;
साधक साधन से स्वयम्, तप-तप-तपे तदात्म्य।

सौभाग्य-शयन-व्रत (शिव-उमा-विबाह)

शम्भु-उमा के ब्याह की, हुई विश्व रस-रीत;
चैत्र शुक्ल तृतिया दिवस, इससे हुआ पुनीत।
व्रत रख इस दिन सब करें, मनबांछित पति प्राप्त;
और सुहागिन शान्ति से, रखें व्रत-अहिवात।
विधिवत वर्णित व्रत करे, पाले निज-निज धर्म;
मिलै सम्पदा, शान्ति, सुख, किए कथित सद्‌कर्म।

श्रीरामनवमी-व्रत (**श्रीरामजन्मोत्सव**)

चैत्र शुक्ल नवमी सुतिथि, लिया राम अवतार;
जग-जन-जन बिहँसे, घटा. भव्य भूमि का भार।

श्री महावीर जयन्ती (**जैनियों के अन्तिम २४ वें तीर्थंकर**)

चैत्र शुक्ल तेरस तिथी, जन्मोत्सव शुभ-पर्व;
मुदित मनावे मिल सभी, जग-जन जैनी सर्व।

चैत्री-पूर्णिमा— (**चैत्र शुक्ल पूर्णिमा**)

चैत्र शुक्ल की पूर्णिमा, तिथि मन्वादि विशेष;
व्रत समृद्धि सुख शान्ति दे, करे पूर्ण उद्देश।

वैशाष मास

वैशाष स्नान (**पूरे मास भर**)

सूर्योदय से पूर्व ही, करके नित स्नान;
प्रभु पर तुलसी दल धरें, पालें पूर्ण विधान।

एक मास इस भाँति से, करके प्रभु की भक्ति;
पाप-मोक्ष करके सुजन, पा जाते नव-शक्ति।

वैशाषी-- (वैशाष कृष्ण षष्ठी, खालसा जन्मोत्सव)

लंगर दें, बाँटें बहुत, कड़ा-प्रसाद बनाय;
समुद मनावें पर्व यह, सकल सिक्ख समुदाय।

अक्षय तृतीया-- (वैशाष शुक्ल ३)

त्रेता की आरम्भ तिथि, अक्षय तृतिया-पर्व;
इस पर देते दान जो, सुखी रहें वे सर्व।

परशुरामजयन्ती (वैशाख शुक्ल ३)

सहस्रबाहु से बली का, मर्दन करके मान;
जग-वन्दित होकर पुजे, परशुराम-भगवान।

नानक-जयन्ती-- (वैशाष शुक्ल ३)

अक्षयतृतिया को हुआ, नानक का अवतार;
सिक्खों के थे गुरु-प्रथम, विदित सकल संसार।

नृसिंह-जयन्ती-- (वैशाष शुक्ल ४)

कढ़ विष्णु नृसिंह बन, दिया खम्भ को फार;
रक्षा की प्रह्लाद की, हिरनाकुश को मार।

जग-प्रसिद्ध तब से हुआ, श्री नृसिंह अवतार;
असुरों का दल-बल घटा, हुआ सुखी संसार।

बुद्धि-जयन्ती—— (वैशाख-पूर्णिमा)

कपिलवस्तु-नरनाथ थे, शुद्धोदन-मम्पन्न;
हुआ पुत्र सिद्धार्थ-सा, उनके घर उत्पन्न।
कालान्तर में वे हुए, गौतम-बुद्ध-महान;
शान्ति, अहिंसा-मंत्र का, दिया विश्व को ज्ञान।

सोम-व्रत—— (वैशाष पूर्णिमा)

शिव-समीपता के लिए, भक्ति-भाव-अनुरक्त;
इस तिथि पर ही सोमव्रत, करते हैं शिव-भक्त।

ज्येष्ठ मास

वट-सावित्री-व्रत—— (बरसाइत, ज्येष्ठ कृष्ण १५)

सभी मुहागिन मुरुचि मे, पूज-पूज प्रतिवर्ष;
'युग-युग पति जीते रहे', माँगें यही सहर्ष।

गंगा-दशहरा—— (ज्येष्ठ शुक्ल दशमी)

गंगा आई जगत-हित, ब्रह्म-कमण्डल त्याग;
गंगा-मज्जन से बढ़े, भक्ति-भाव-अनुराग।
इस तिथि पर श्रद्धा महित, जो करते स्नान;
दस *पापों से मुक्त हों, यह युग-युग का ज्ञान।

---

*(१) बिनी दी हुई वस्तु का लेना (२) अशास्त्रीय हिंसा (३) पर स्त्री गमन (४) कटु-वचन बोलना (५) मिथ्या-भाषण (६) चोरी (७) अप्रासंगिक वकवाद (८) परधन हरने की इच्छा (९) अपकार (१०) झूंठा आरोप लगाना।

आषाढ़ मास

जया पार्वती-व्रत (आषाढ़ शुक्ल १३)

जो सुहागिनी जया-व्रत, विधिवत करें सहर्ष;
वे अहिवाती बन रहे, हो उनका उत्कर्ष।

श्रावण मास

नाग-पंचमी (श्रावण शुक्ल ५)

नाग-पचमी को करें, नाग-दृष्ट सोल्लास;
दूध पिला, पूजा करें, मिटे नाग का त्रास।

श्री तुलसी-जयन्ती (श्रावण शुक्ल ७)

श्रावण शुक्ला सप्तमी, बनी पुण्य-तिथि धन्य;
त्याग लोक सुरपुर गए, तुलसी-भक्त अनन्य।

अमर-काव्य 'मानम रचा', दिया विश्व को ज्ञान;
जग बन्दित हो कर पुजे, तुलसीदास-महान।

रक्षा-बन्धन (श्रावण शुक्ल १५)

सुर-गुरु-रक्षा-सूत्र से, विजयी बने सुरेन्द्र;
करें श्रावणी विप्रवर, बन कर रक्षा-केन्द्र।

बहिनें घर-घर भ्रात को, बाँधें राखी आज;
युग-युग सुदृढ सनेह से, सिंचित रहा समाज।

भाद्रपद मास

श्रीकृष्णजन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्ण ८)

मोह-रात्रि की अष्टमी, है इतिहास प्रसिद्ध;
यशुमति ने मायाजनी, जना देवकी सिद्ध।

देवकि-सुत श्रीकृष्ण ने, लिया मनुज अवतार;
धर्म स्थापन से किया, जग-जन जयजयकार।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की, करणी-कथा अनन्त;
कह-कह कर सुख पा रहे, सच्चे साधक-पन्त।

हरितालिका (भाद्रपद शुक्ल ३)

शिवशंकर से जोड़ निज, निष्ठा, नेह अपार;
विश्व-विदित व्यवहार से, चकित किया संसार।

तप-तप ताप कठोरतम, बनी उमा जग धन्य,
वैसा तप अब तक कही, किया न कोई अन्य।

सब सुहागिनें श्रेष्ठ-व्रत, रख कर पूजें गौर;
हिल मिल गातीं, मनातीं, सुकृति शिवा शिरमौर।

श्री गणेशचतुर्थी (भाद्रपद शुक्ल ४)

सिद्ध-विनायक-व्रत विषद, दे विवेक वर बुद्धि;
वाणी-बुद्धि-विलास से, आती आत्मिक-शुद्धि।

पुत्र, पौत्र, प्रभुता परम, गज, गोधन, रथ, अश्व;
विधिवत व्रत करके मिले, सुयश, शान्ति सर्वस्व।

ऋषि पंचमी (भाद्रपद शुक्ल ५)

अपामार्ग या आक की, दातुन ले कर सात;
मुख-मज्जन करके, करे, स्वयम् शुद्ध सब गात।

शुभ-फल-दाता है परम, पौराणिक परिशिष्ट;
जप, तप, संयम से स्वयम्, साधक बनें विशिष्ट।

सात-वर्ष संलग्न हों, व्रत पालें परिपूर्ण;
पाप-दोष, दुख-दीनता, उनके बनें विचूर्ण।

अनन्त-चतुर्दशी (भाद्रपद शुक्ल १४)

विश्व-रूप भगवान हैं, जिनका आदि न अन्त
उनकी पूजा कर, धरें, निज-निज हाथ अनन्त।

आश्विन मास

सरस्वती-पूजन (आश्विन शुक्ल ७)

अनध्याय रख कर करे, ग्रथों पर दृढ़-भक्ति;
उससे आती मनुज में, सुदृढ़-साधना-शक्ति।

मान देवता ग्रंथ सब, इस तिथि पर सोल्लास;
पूजे विधिवत तब मिले, उसको परम प्रकास।

महाष्टमी (आश्विन शुक्ल ८)

भद्रकालिका-रूप में, दक्ष-यज्ञ पश्चात्;
महिमा साध्वी-सती की, हुई जगत-विख्यात।

श्री विजयादशमी (आश्विन शुक्ल १०)

लंका पर पा कर विजय, लौटे जब श्रीराम;
अवध अमित उल्लास में, बना अधिक अभिराम।

लिया अहिंसा-व्रत सुखद, कर हिंसा का त्याग;
नृप अशोक ने विश्व को, दिया शान्ति अनुराग।

बौद्ध पूज कर बुद्ध को, पाते नव-उत्कर्ष,
शील ग्रहण करते तथा, देते दान सहर्ष।

लीला कर श्रीराम की, कर रावण का अन्त;
जग-जन-जन हों हर्षमय, गावें गुण-गण मन्त।

शरद-पूर्णिमा (आश्विन शुक्ल १५)

पूर्णाचन्द्र की किरण से, आते हिम-कण स्वच्छ,
बनते अमृतफल वही, इस तिथि पर प्रत्यक्ष।

रात्रि-जागरण कर स्वयम्, साधें जा जन इष्ट;
वे लक्ष्मी की कृपा का, पाते फल-निर्दिष्ट;

'प्रवारणोत्सव' बौद्ध-जन. करते हो एकत्र;
करें दान, पूजा सविधि, यत्र-तत्र-सर्वत्र।

कार्तिक मास

धन्वन्तरि त्रयोदशी, धनतेरस (कार्तिक कृष्ण १३);

आदि चिकित्सक वैद्य वर, धन्वन्तरि श्रीमान्;
गए अमरपुर शान्तियुत, प्रसरित कर निज ज्ञान।
ले-लेकर वर्तन नए, भरते हृदय उछाह;
दीप-दान देते सभी, घर-घर पर सोत्साह।

ज्योति-पर्व: दीपावली (कार्तिक कृष्ण १५)

लक्ष्मी-पूजन प्रथा पर, जग-जन-जन आकृष्ट;
स्वच्छ बना आवास सब, आराधें निज इष्ट।
दीप-दान द्वारा करें, तिमिर-१-तोम२-तम३ नाश;
करते लक्ष्मी के लिए, प्रज्ज्वल पूर्ण प्रकाश।
अन्तिम तीर्थंकर महा, महावीर-भगवान्;
जग जागृत करके हुए, इस तिथि पर निर्वाण।

गोवर्द्धन-पूजा अन्नकूट (कार्तिक शुक्ल १)

मान मर्दकर इन्द्र का, ब्रज को दिया महत्व;
गोबर्द्धन-पूजा यही, देती है गुरु-तत्व।
बलि-पूजा करके करें, वामन-प्रभु की याद;
जिनने निज अवतार से, भरा विश्व-आह्लाद।

---

१. अन्धकार २. समह ३. अज्ञान, कलुषता

गौओं का सम्मान कर, करें हृदय प्रतिशोध;
दूध-दही दे देश को, देतीं प्रबल-प्रबोध।
जग-जन-जन भूलें नहीं, गौओं के उपकार;
श्रीकृष्ण ने दिया था, यही ज्ञान का सार।

यम द्वितीया (भैया दौज) (कार्तिक शुक्ल २)

भ्रात-भाव भर कर हृदय, यमुना न निज भ्रात;
न्योता श्री यमराज को, हुई कीर्ति विख्यात।
प्रचलित प्रथा पुनीत, यह जा भगिनी के गेह;
भाई भोजन कर भरे, उसके उर स्नेह।
मानें निज सौभाग्य को, पाकर तिलक-विशेष;
विज्ञ, बहिन-पूजा करें, है ऐसा यह देश।

करवा-चौथ (कार्तिक शुक्ल ४)

निज सुहाग-हित सुहागिन, पति-रक्षा के अर्थ;
रक्खें व्रत, पति बन सके, विजयी, बली, समर्थ।

अक्षय-नवमी (कार्तिक शुक्ल ९)

इस युगादि-तिथि से हुआ, द्वापर का आरम्भ;
तुलसी-विष्णु-विवाह के, रुपते इस पर खम्भ।
तुलसी-व्रत-गरिमा-गहन, गाई गई महान;
पौराणिक-सद्ग्रंथ दें, यह युग-युग का ज्ञान।

बैकुण्ठ-चतुर्दशी (कार्तिक शुक्ल १४)

तिथि मनवादि विशेष यह, भरती भाव पवित्र;
ब्रह्म एक, कुछ भी कहो, शिव या विष्णु चरित्र।

काशी का मन्दिर हुआ, विश्वनाथ का रूप;
शैव-वैष्णव शान्ति से, पूजें ब्रह्म-स्वरूप।

इस प्रकार सद्युक्त से, हुए दूर मत भेद;
व्यर्थ वितण्डावाद के, मिटे भेद-उपभेद।

कार्तिकी-पूर्णिमा (कार्तिक शुक्ल १५)

१त्रिपुरोत्सव के पर्व पर, कर गंगा-स्नान;
भक्त भाव भर पूज शिव, करें दीप का दान।

करें सिद्धिगिरि-यात्रा, जैन-वृन्द प्रतिवर्ष;
रथ-यात्रा-आयोजन, उत्सव करें सहर्ष।

मार्गशीर्ष (अगहन) मास

देवोत्थान-एकादशी (मार्गशीर्ष कृष्ण ११)

फलाहार करके करें, कोई यह व्रत पूर्ण;
निराहार रहते अपर, करते पाप विचूर्ण।

पौराणिक-आख्यान से, मिलता है गुरु-तत्व;
जिससे इसको मिल सका, देवोत्थान-महत्व।

---

१. त्रिपुर—अहम् को कहते है जिसका दूसरा नाम जीव है जोकि आत्मा से भिन्न होता है।

गुरु तेगबहादुर शहादत दिवस (मार्गशीर्ष शुक्ल ५)

औरंगजेबी - क्रूरता, है इतिहास - प्रसिद्ध;
उसी ताप में तप बने, अगणित साधक सिद्ध।
तेगबहादुर नवम गुरु, होकरके बलिदान,
अमर हुए, दूनी हुई, सिक्ख-धर्म की आन।

मौन-एकादशी (मार्गशीर्ष शुक्ल ११)

तीर्थंकर उन्नीसवें, स्वामी श्री मल्लिनाथ,
जन्म, दीक्षा, ज्ञान पा, बढ़े बना सत्पाथ।
पूर्ण दिवस निज मौन-व्रत, रखते जैनी-वृन्द;
पूजन-आराधन करें, त्याग सकल छल-छन्द।

गुरु-गोविन्दसिंह (पौष शुक्ल ७)

दशम-सिख-गुरु हुए थे, गोविन्दसिंह महान,
विश्व-विदित जिन के हुए, यश शाका के गान।

माघ मास

संकष्टचतुर्थी (माघ कृष्ण ४)

मनवांछित-फल दे हरें, जो जन-जन के कष्ट;
पूजें उन गणराज को, सभी मान कर इष्ट।

वसन्त-पंचमी (माघ शुक्ल ५)

विद्या, बुद्धि विलासिनी, वीणापाणि वरिष्ट;
वरदायनि वर, विभव दें, पूजे जो रख इष्ट।

माघी-पूर्णिमा (माघ शुक्ल १५)

वैशाली में बुद्ध ने, दिये अमर उपदेश;
इससे इस को बौद्ध-जन, मानें दिवस विशेष।

फाल्गुण मास

शिव-रात्रि (फाल्गुण कृष्ण १४)

निराहार-व्रत रख करे, पूजा परम पुनीत;
करे जागरण जुगति जप, हो सब रात्रि-व्यतीत।
धारण कर रुद्राक्ष को, 'नमः शिवाय' मंत्र;
जप महेश मन में धरे, सफल बने शिव-तंत्र।
नीलकण्ठ बन कर दिया, जग को अमित उछाह;
हुआ शिवा शिव का स्वयम्, इस तिथि पर था ब्याह।

होलिका-महोत्सव (फाल्गुण शुक्ल १५)

जली होलिका, बच गया, विष्णु-भक्त-प्रल्हाद;
पृथ्वी पर सद्धर्म की, बढ़ी लोक-मर्याद।
होली के शुभ-पर्व पर, रख कर उसका ध्यान;
करते युग-युग से सभी, हिल मिल मंगल-गान।
शील-ग्रहण करते कहीं, धर्म-श्रवण सानन्द;
बौद्ध त्रिविधि-बिधि इस तरह, पाते परमानन्द।
डोलोत्सव करके कहीं, पूजें विष्णु महान;
करें कामना 'शान्ति से, हो जग का कल्याण।

सप्तम खण्ड

षट्-ॠतु-वर्णन

भारतीय-षट्-ॠतुएँ भारतीय दृष्टिकोण से सर्वथा अनुकूल और सुखकर है। आवश्यकता यह है कि प्राचीन परम्पराओं और अर्वाचीन गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए आहार-विहार किये जाएँ—

—'शंकर'

तप्त ग्रीष्म, पावस सरस, शरद, शिशिर, हेमन्त;
षट्-ॠतु सुख कर, स्वास्थ्यप्रद, है ॠतुराज वसन्त।

—'शंकर'

ऋतुराज-वसन्त

शिशिर-शीत-संसर्ग का, आखिर आया अन्त;
प्रगटा सुखकर सैन्य सह, जग ऋतुराज-वसन्त।

लहक लता लिपटीं तरुन, तरु-तरु भरी उमंग;
सजा सजा शोभित किये, वन-उपवन के अंग।

वृक्ष-वृक्ष स्वागत करें, बना-बना वर-द्वार;
झुक-झुक झूमें वन-लता, बन-बन बन्दनवार।

गुलखैरू, गुलदाउदी, गुलमिहदी, गुलनार;
पुष्प पाँवड़ों पर करें, स्वागत सौ-सौ बार।

पादप-पादप-पुंज पर, आई आभा आब;
सौरभ सरसाते सुमन, गर्बित गरुअ गुलाब।

पावन पुष्प पलास के, अधिक अरुण अंगार;
करें आरती-सी सभी, निज नव-ज्योति प्रहार।

मंजु मालती-मंजरी, कर मृदु मृदु मनुहार;
भेंटे भरसक भाव भर, पल-पल पुष्प हजार।

डाल-डाल डोलें रटें, कृष्ण, कृष्ण कमनीय;
पिक-शुक की वाणी मधुर, दारुण-दुख दमनीय।

गुलखैरू—नीले-रंग के फूल का पौधा

गुलदाउदी—श्वेत-रंग के गुच्छेदार फूलों का पौधा

गुलनार—अनार का लाल फूल

भ्रमर भाँवरें भर करें, गुन-गुन, प्रेम-प्रकास;
नाचें गाएँ मुग्ध मन, भर उर-उर उल्लास।

विहँग-वर्ग वन-वन उड़ें, भर अतिशय अनुराग;
नन्दन-कानन-से हुए, वन-वन-बाग-तड़ाग।

वर-वसन्त ऋतुराज के, गुण-गुण-गरिमा-गीत;
वन-खग बन्दीगण कहें, विरुदावली-पुनीत।

साधक साधन से स्वयम, सिद्धि, शान्ति संयोग;
इस ऋतु में करते सुलभ, सुखद स्वास्थ्य के योग।

नियमित भ्रमण सुपथ्यवत, होता सुखकर आप;
कंचन-काया कर हरे, आधि-व्याधि, त्रय-ताप।

ग्रीष्म

धूल-धूसरित-धरा पर, भर जाता उत्ताप;
धाम-धाम धर धीर सब, सहते आतप-ताप।

रवि-किरणें कड़ बढ़ चलें, राजत रथ-राजीव;
किन्तु ताप-तप से तपें, जग-जड़-जंगम-जीव।

गगन, गर्द-गुब्बार से, हो जाता बदरंग;
बचा न पाए ग्रीष्म से, अम्बर अपना अंग।

उठ-उठ-उठतीं लू-लपट, लिए बवंडर-धूल;
पाते पथिक प्रशस्त-पथ, पग-पग पर प्रतिकूल।

पानी पी, पी कंठ को, तरल करें प्रति बार;
स्वेद - रूप निकले वही, बह - बह बारम्बार।

देह - देह दिपती रुचिर, निखर - निखर कर रंग;
बदन विशुद्ध बने बहुत, उर - उर उठत उमंग।

हृदय - कमल - कमनीय को, सींचें बारम्बार;
बह-बह बहता वह सभी, स्वेद - बिन्दु बन धार।

विकल बिबिध वन-जीव जग, पा दारुण-दुख-दाघ;
दुखदायी दोनों बनें, वनचर - बाघ, निदाघ।

काट - कटक कट जल मरा, बना पपीहा दीन,
प्रखर - ग्रीष्म - उत्ताप की, छाई शक्ति नवीन।

जीव - जन्तुजल के लिए, वन - वन बिहरें क्षुब्ध;
मार गिराते कपट कर, कही शिकारी - लुब्ध।

अम्बर अवनि अनेक विधि, वर्ष-वर्ष फल भोग;
पा जाते है ग्रीष्म से, दुख - सुख का संयोग।

तपता तप - तप ताप तब, आता सुख-कर योग;
करते स्वागत सुबुध सब, समझ सफल संयोग।

पावस

ग्रीष्म - प्रखरता - कष्टको, काट - काट कर सर्व;
जग-जन-जन, पाता परम, पावन पावस-पर्व।

वन - वन वैभव प्रकृति का, बिखरे सब सर्वत्र;
हरियाली हो भूमि पर, यत्र, तत्र, एकत्र।
विटप-विटप बिकसे घने, नव-पल्लव, नव-फूल;
भ्रमर भाँवरें भर करें, कली - कली अनुकूल।
घटा टोप - घन घिर उठें, घुमड़ - घुमड़ घनघोर;
आए अम्बर अवनि पर, अँधियारी हर ओर।
झप्प झरोखों पर झपै, छाए छिति छिति छोर,
चक्रवाक चौकें चलें, निज निवास की ओर।
काले कहीं कपास - से, घन उमण्ड घनघोर;
घुमड़-घुमड़ घिर-घिर फिरें, नभ में चारों ओर।
दौड़ - दौड़ दामिन फिरे, करे पपीहा शोर;
वाणी बोले बिलसिनी, नाच - नाच कर मोर।
मधु - संचय करती कहीं, मधु - मक्खी सानन्द;
मधुप मुदित मन ले उड़ें, मन - चाहा मकरन्द।
सलिल - सुधा से हो गए, सूखे - हर सरबोर;
हुए उल्लसित जगत-जन, जीव - जन्तु सब ओर।
कल - कल कर, झरने झरें, भरें तलैया - ताल;
नद्दी - नद उफना चलें, धरें रूप विकराल।
सिमिट - सिमिट सब जल चले, कर संगम संयोग;
सुबुध साधना से करें, ज्यों जीवन उपयोग।

हरित - लता, पल्लव हरे, तृण, तरु हरित ललाम;
है हरियाली हर दिशा, गुण- गण - गरिमा - धाम ।
वर - वितान तानें विटप, बने बिबिध वर - द्वार;
लहर-लहर लिपटीं लता, बन बन-बन्दन वार ।
ललित-लता लिपटीं तरुन, तरु-तरु हुए विभोर;
छाए नव - पल्लव घने, हरे हरे हर ओर ।
झुक-झुक झूमें पवन से, पल-पल पादप-पुंज;
बिखरा वैभव प्रकृति का, वन - वन बने निकुंज ।
सरसिज-सौरभ से सुलभ, है सुबास सब ओर;
वन-वन, बाग-तड़ाग सब, बन चारु चित-चोर ।
समयोचित वर वृष्टि हो, सुधा सरिस सुख मूल;
जग-जन-जन हों कार्य-रत, चिंताएँ, दुख भूल ।
कृषि-कार्यों को कर कहीं, कृषक गा रहे गीत;
साथ-साथ श्रम-साधना, और चले संगीत ।
गाँव-गांव ग्रामीण-जन, भर उर-उर उल्लास;
झूल-झूल झूला, करें, रास-हास-परिहास ।
झूल-झूल झूला कहीं, झूलें तरुण, कुमार;
गातीं कलकण्ठी कहीं, कजरी, मेघ-मलार ।
दूर्वादल, दधि, दूध का, हो अभाव सब दूर;
स्वेच्छा से सबको सुलभ, सकल द्रव्य भरपूर ।

जीवन-दाता जगत का, पावस प्रतिभा-पुंज;
लहर-लहर लहरा करे, रूखे-कुज निकुंज।

गिरिखण्डों पर कुहुकनी, बोले मीठे बोल;
कली-कली विकसित करे, सरस सुधा-रस-घोल।

पिक, शुक, कोकिल मुग्ध मन, भर-भर बड़ी उड़ान
विटप-विटप बैठें, उड़ें, कर-कर कलरव-गान।

चमक दिखाते रात में, उड़-उड़ कर खद्योत;
डाल-डाल डोलें कहीं, दिन में कीर कपोत।

उड़ती नभ में शुभ्र वर, वकुल पक्ति अनमोल;
दादुर झिल्लीगण रट, अपने अपने बोल।

वर्षा बैरिन है उन्हें, जिनके पिया विदेश;
गिन-गिन दिन वे काटतीं, रख निज विरहिन-वेष।

उनको पावस परम प्रिय, प्रियतम जिनके पास,
झुक-झुक झूमें मुग्ध मन, भर-भर उर-उल्लास।

सब सॅयोगिनी सुख सनीं, गाएँ गुण-गण गीत;
यही मानती हैं सदा, पावस परम पुनीत।

शरद

शोभित सुन्दर शुभ्र नभ, निखरा चारों ओर;
शरद-शारदी शुभ सुखद, छाई छिति-छिति छोर।

वर्षा विगत बने सभी, लिप-पुत नवल निकेत;
फूले काँसों से हुए, श्वेत-श्वेत सब श्वेत।
कहीं-कहीं होती कभी, थोड़ी-थोड़ी वृष्टि;
है प्रसिद्धि, होती नहीं, अधिक शारदी-वृष्टि।
शरद-पूर्णिमा का अधिक, युग-युग यहाँ महत्त्व;
साधक समझें स्वयम् सब, गूढ़-गम्य-गुरु-तत्व।
शशि-किरणों से सुधा का, पाने को उपहार;
रखतीं भर-भर खीर से, घर-घर घरनी थार।
इसी रात में गोपिका, व्रज में रच कर रास;
बनी प्रेमिका कृष्ण की, कर-कर भक्ति-प्रकास।
वर्ष-वर्ष वितरण करें, इस निशि, औषधि संत;
हो जाता जिससे सुलभ, श्वाँस-रोग का अन्त।
रम्य-रास रच कर किए, कौतुक कृष्ण अनेक;
पाई पर्व पुनीत यह, शरद-पूर्णिमा एक।
मस्त मालती, माधवी, सुरभित करे दिगंत;
कुमुद कुमुदिनी, केतकी, फूली फली लसंत।
उज्ज्वल-तारागण छिटक, भरे गगन द्युतिमान;
अम्बर-आभा अधिक प्रिय, जन-जन करें बखान।
बड़ बनें विधियोग से, रहें न कोई क्षुद्र;
शरद-चाँदनी में दिपे, जग ज्यों क्षीर-समुद्र।

हेमन्त

गरिमा-ग्रीष्म गई सभी, सुषमा-शरद समेत;
आई ऋतु-हेमन्त की, हुआ हिमांचल श्वेत।

आच्छादित हिम से हुआ, हिमगिरि-मुकुट-महान;
झलकीं झलकें झिलमिलीं, शृंगशृंग द्युतिमान।

बह-बह वायु बढ़ी, चली, करे शीत उत्पन्न:
अगहन-गहन-गरिष्टता, है सुस्वास्थ्य सम्पन्न।

संयोगिनि सुख से करें, इस ऋतु का आह्वान;
बढ़े वियोगिनि विरहवश, विरह-व्यथा-व्यवधान।

मनबांछित सुख भोगतीं, जो पाएँ निज कंत;
सिद्ध, संत साधन करें, काटें ऋतु-हेमंत।

शिशिर

घट-घट घटता दिन तथा, बढ़-बढ़ बढ़ती रात;
कटता क्रम-क्रम से कठिन, बढ़ा शिशिर-उत्पात।

माघ-मास माउठ भरे, घर-घर मोद महान;
काटें कष्ट किसान निज, बढ़ा अन्न-अभियान।

कृषि-कार्यों के हित स्वयम्, करें न वे विश्राम;
सतत साधना से सभी, कर्मठ करते काम।

ठिठुर-ठिठुर कर ठंड में, करें कार्य निःशंक;
कठिन कष्ट काटें तदपि, रहें रंक के रंक।

ताप-ताप तम-तोम में, काटें कष्ट करोड़;
वर्ष-वर्ष वे जीतते, शिशिर-शीत से होड़।

शिशिर शान्ति मे भोगते, धनिक-वर्ग निर्द्वंद;
किन्तु विवश हो सहें सब, दीन-दलित दुख-द्वंद।

—

अष्टम खण्ड

(रस-रहस्य) (काव्य में नव-रस)

'रसो वै सः'

(उपनिषद)

रस्यते इति रसः

रक्षित रखते राष्ट्र को, वीर, बला, विद्वान्;
धन्य राष्ट्र, जन-जन जहाँ, रत-रहस्य-रुचिमान ।

'शंकर'

रस परिचय

'रस' शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है जैसे :—'वे रस डोलत आपने, उनके फाटत अङ्ग'। यहाँ रस से तात्पर्य स्वाभाविक उमङ्ग और उल्लास से है। औषधियों में भी 'रस' शब्द का प्रयोग किया जाता है साधारणतः रस शब्द से मधुरता का अभिप्राय होता है वैसे अर्क, जल आदि अनेकानेक अर्थों में इस शब्द का प्रयोग होता है।

—काव्य में विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के सयोग से रस की उत्पत्ति होती है और वास्तव में रस ही काव्य का प्राण हुआ करता है।

—काव्य में रति-उद्बोधक कार्यों तथा नाटकों में वाक्-विलासो और सम्वादों को विभाव कहते हैं। विभाव के आलम्बन और उद्दीपन

दो भेद माने गए हैं। नायक-नायिका काव्य के आलम्बन और उद्दीप्त करने वाले साधन जैसे सुरभितपवन, चाँदनी और चन्द्रमा आदि 'उद्दीपन' कहलाते हैं।

—काव्य के स्थायी-भावों का जो अनुभव कराते हैं उनको अनुभाव कहते है, जिस भाव का हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़े, वह स्थायी भाव अथवा व्यभिचारी भाव कहलाता है।

—काव्य मे निम्नलिखित ९ रस माने गए है :—

श्रृङ्गार, करुण, अद्भुत, हास्य,
वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स
और शान्त।

प्रत्येक रस का विवेचन इस प्रकार है।

श्रृङगार

स्थायी भाव—रति

देवता—विष्णु अथवा श्री कृष्ण भगवान्

वर्ण—श्याम

आलम्बन—नायक और नायिका

उद्दीपन—सखा-सखी, वन-उपवन, चन्द्र-चाँदनी आदि

अनुभाव—हाव, भाव, मुसकान, कटाक्ष आदि

सचारी भाव—हर्ष, स्मृति, मति और औत्सुक्य आदि

विशेष—श्रृंगार, रसराज कहलाता है।

प्रिय वस्तु में मन के पूर्ण प्रेम-परायण भाव को रति कहते हैं।

श्रृंगार के मुख्य अग है (१) संयोग-श्रृंगार और (२) विप्रलम्भ श्रृंगार।

संयोग-श्रृंगार प्रेम-पगे नायक-नायिका जब पारस्परिक दर्शन, स्पर्श और संलापादि में निमग्न होते है, तब से संयोग-शृंगार माना जाता है।

रम्य-रास रच नित्य प्रति, कृष्ण-राधिका संग;
नाचें-गाएँ गीत-गुण, हिलमिल सहित उमंग।
कृष्ण-कान्ति कमनीय को, कर-कर पूर्ण प्रकास;
भव्य-भावना भर हृदय, रचती राधा रास।
गोप, गोपियाँ गा करें, रास-हास-उपहास;
दर्शक दे-दे तालियाँ, भरते उर-उल्लास।
कृष्ण-कृष्ण कहतीं सखी, हो कर आत्म-विभोर;
राधा-राधा रट रहें, नागर नन्द किशोर।
मोर-मुकुट में राधिका, झाँक-झाँक निज रूप;
बलिहारी हों कृष्ण पर, गुण-गरिमा-अनुरूप।
राधा रखें रम्य-रति, ललित लाल की लीक;
पालें प्रण पारस्परिक, पावन-प्रेम-प्रतीक।
चैत्र-चाँदनी, प्रिय-पवन, कलकण्ठी के गान;
मन-मन में रस-रँग भरें, मधुमिश्रित मुसकान।
नित्य-निकाई नव-नयन, निज-निज रूप निहार;
कृष्ण-राधिका मुग्ध-मन, बने बध-बलिहार।
सुख-सरिता-सी बहे उर, सुन-सुन स्वर-संलाप;
बने बिबिध बिधि युगल वे, अनुगत अपने आप।

निरख-निरख नव-मेघ-सी, रूप-राशि भरपूर;
मंत्र-मुग्ध मन राधिका, बनता मत्त-मयूर।

कृष्ण-कान्ति को राधिका, रुच-रुच कर अनुहार;
मुदित मयूरी-सी नचे, निज नव-रूप निहार।

राधे देखें कृष्ण में, सुख-सँयोग-संसार;
कृष्ण, राधिका में लखें, शुभ सोलह-श्रृंगार।

विप्रलम्भ-श्रृंगार—जब अनुराग अधिक प्रबल और प्रिय समागम का अभाव हो तब विप्रलम्भ अथवा वियोग-श्रृंगार माना जाता है। इसके तीन भेद होते हैं :

(१) पूर्वानुराग (२) मान और (३) प्रवास

पूर्वानुराग— मिलन अथवा समागम से प्रथम हृदय में जिस अनुराग का आविर्भाव होता है, उसको पूर्वानुराग कहते हैं। इसके चार अंग हैं :

(१) प्रत्यक्ष-दर्शन (२) चित्र-दर्शन (३) श्रवण-दर्शन और (४) स्वप्न-दर्शन।

प्रत्यक्ष-दर्शन

मुख-मण्डल मण्डित रुचिर, रूप-राशि राकेश;
सखि ! सम्मुख-सुख हृदय में, बसा बना वह वेष।

चित्र-दर्शन

मन मोहन में मति फँसी, चित्त चौगुनी चाह;
चारु-चित्र देखे बढ़ा, परिमल-प्रेम-प्रबाह।

श्रवण-दर्शन

मनमोहन-मुरली बजी, दारुण दुख दमनीय;
सुख-सन्देश सुना हुई, कलित कीर्ति कमनीय।

स्वप्न-दर्शन

मोहन-मंजुल-मूर्ति-छबि, लौनी ललित ललाम;
देख स्वप्न सखि ! सुखद मन, बना दुखद दुखधाम।

मान—प्रियापराधजनित प्रणय-कोप को मान मानते हैं। यह तीन प्रकार का होता है :

(१) लघु (२) माध्यम और (३) गुरु।

लघु-मान

प्रिय ! पवित्र पत्नी मिली, फिर भी यह उत्पात;
यहाँ-वहाँ आँखें लगा, बोते विष-व्याघात।

मध्य-मान

मैं भोरी, गोरी वही, चतुर सलौनी नारि;
जिसने मोहन-मंत्र पढ़, दई मोहिनी डारि।

गुरु-मान

मोहन ! मोहन-मंत्र से, तुम जिसके आधीन;
परस-परस पग-धूलि को, हो उसमें लवलीन।

प्रवास

जब प्रियतम परदेश गमन या निवास करता है तब उसे प्रवास माना जाता है। इसके दो अंग होते हैं :

(१) भूत-प्रवास (२) भविष्य-प्रवास

भूत-प्रवास

दूर द्वारिका देश में, बसे द्वारिका-नाथ;
व्रज-बनिताएँ विबश हो, बन-बन बनीं अनाथ।

सुख-सँदेश सबके लिए, लाए उद्धव राज;
योग-भोग-संयोग का, कर न सके कुछ काज।

हम व्रज बनिताएँ बुरीं, भली-कूबरी नारि;
मनमोहन ! मन में गुनो, अपनी ओर निहारि।

हम वियोगिनी विरह-बश, बनी विकल विख्यात,
शिशिर, शरद हेमन्त भर, बही नयन-बरसात।

हम गँवारिनी ग्वालिनी, गाएँ गुण-गण-भोग;
योग नहीं हम जानतीं, जानें दुखद-वियोग।

भविष्य-प्रवास

मनमोहन मानत नहीं, जानत जग की रीत;
विरह-व्यथा तब मिले जब, बनता बिधि विपरीत।

दूर द्वारिका देश को, करते कृष्ण पयान;
व्रज-बनिताएँ कह उठीं, लोक-रीति का ज्ञान।

हम पपीहरी की बुझै, स्वाँति-सुधा से प्यास;
बुझा सकोगे वहाँ से, हो कैसे विश्वास।

एकादश-दशाएँ—वियोग में नायिका की जो दशाएँ होती हैं वे निम्नलिखित हैं :

१–अभिलाषा––प्रियतम के मिलने की उत्कट इच्छा को अभिलाषा माना गया है :

व्यथा व्यतीत वियोग की, कब कैसे हो हन्त;
अभिलाषा अपनी अधिक, भुज-भर भेटे कन्त।

२–चिन्ता—चित्त-शांति-साधन विचार को चिन्ता मानते है।

चित्त-चारु चिन्ता करे, हरे हर्ष, हहरात;
छार-छार छलनी बने, गुण-गरबीले-गात।

३–स्मरण—संयोग समय की घटनाओं, चेष्टाओ और समागम-सुखो की स्मृतियो को स्मरण माना है।

स्वप्न सदृश सब हो गए, वन-वन-बाग-विलास;
सोच-सोच सुख-समय वह, होता हृदय हुलास।
दे दे दुख बैरिन बनी, शीतल सुखद सुगंध;
लहर-लहर लहरा रहे, प्रिय ! पावन प्रतिबंध।

४–गुण-कथन—प्रिय गुणानुवाद कथन को गुण-कथन मानते है।

दीन-द्रोपदी-दुख हरे, हरि हो करुणाकन्द;
प्रभु ! करुणाकर काट दो, दुख-दारुण-फरफन्द।

५–उद्वेग—व्याकुल हो कर किसी विषय मे चित्त न लगने का नाम उद्वेग माना जाता है।

उठ-उठ उठती चौंकती, चितै-चितै सब ओर;
गिर-गिर गिरती सेज निज, कहे कहाँ चित-चोर।

६. **प्रलाप**--प्रिय की अनुपस्थिति में उसे उपस्थित मान कर अथवा वियोग से विशेष व्यथित हो कर जो निरर्थक बातें की जाती हैं वे प्रलाप होती हैं।

आई घिर-घिर घन-घटा, शीतल, सुखद समीर;
आँगन आ कर अब सभी, नहीं बढ़ाएँ पीर।
कूक-कूक कोकिल करे, क्यों क्रन्दन दिन-रात;
गए समय-शुभ सकल अब, हृदय न दुःख समात।

७. **उन्माद**--वृथा व्यापार करने, जड, चेतन विवेक रहित होने और व्यर्थ हँसने रोने आदि की दशा को उन्माद कहा है।

हँस-हँस हाथ नचा कभी, कह-कह मीठे-बोल;
दौड़-दौड़ दौड़े, चले, हुई फिरे हिंडोल।

८. **व्याधि**--वियोग-व्यथा जनित शरीर-कृशता पाण्डुता आदि अस्वास्थ्य को व्याधि मानते हैं।

गए छोड़ छल-छन्द कर, स्वामी, शूर, समर्थ;
अब अटके अधबीच मे, प्राण-पखेरू व्यर्थ।

९ **जड़ता**--अंगों और मन के चेष्टा-शून्य होने और इन्द्रियों की गति के अवशेष को जड़ता कहा गया है।

पति-पाती पा कर करे, विह्वल बहुत विलाप;
बनिता बनी बिचित्र जड़, चले चौंक चुपचाप।

१०. **मूर्छा**--वियोग-दशा में शरीर के दुःख-सुख का जब ज्ञान न रहे तब उसे मूर्छा कहते हैं।

आए-आए अब यहाँ, यही यातना-योग;
nर पति पाए बिना यह, हुआ मूरछा-रोग।

११. **मरण**—वियोगावस्था में चरम नैराश्य की दशा को मरण गणना में मानते हैं।

जग-जीवन जड़ बन बना, बढ़-बढ़ बढ़ा विषाद;
nाई नहीं पपीहरी, स्वाँति-सुधा-सुख-स्वाद।
जब जंगम, जग-जीव जड़, जाता जग से अन्त;
मिलें मिलन-सुख-सारद, करुणा कर के कन्त।

करुण-रस

स्थायी-भाव—शोक

देवता—यमराज

वर्ण—कपोत चित्रित

आलम्बन प्रिय-बन्धु, समाज, देश आदि

उद्दीपन—दाह-कर्म, यातना, देश-पतन का निरीक्षण आदि

अनुभाव - रोदन, भाग्य निन्दा और प्रलाप आदि

सचारी भाव—निर्वेद, मोह, व्याधि, ग्लानि, चिन्ता आदि

विशेष—इष्ट के नाश और अनिष्ट की परिपुष्टता अथवा विर्भाव से इस रस की उत्पत्ति होती है। कतिपय आचार्यों ने इस का देवता अरुण माना है।

ों का फेर

जो व्रज बना विशेष था, रस, गोरस-सुख-सद्म;
विरस बना वह विवश अब, परिकर-परिकर-पद्म।

व्रजबासी, व्रजबलि सबै, टेरें हरि हरि हेर;
विकल बने वे बिलपते, देख दिनों का फेर।

करुण कथा

कैसे कष्ट किसान के, रट दीन-दुख-द्वन्द;
जब जागृत जन-जन करें, फैलफूट-फरिफन्द।
प्रगट प्रेम प्रस्तुत अधिक, उर-अन्तर अपघात;
धनिक करेंगे क्या कभी, करुण-कथा की बात।

कारुणिकता

सरवर सौरभ सुमन से, रहे जहाँ सरबोर;
धूल-धूसरित धरा अब, करते गीदड़ शोर।
देते रहे सुबास जो, विटप-विटप वर वृन्द,
विरस बने वे विबश अब, अपने करुणाकन्द।

मर्म व्यथा

पपिहा प्रण पर सर्वदा, रखता अपनी आन;
देता कब कितना किसे, पर पयोद प्रतिदान।
चिनगारी चुग-चुग उड़ी, मगन गगन की ओर;
प्रम पाल पाई कहाँ, कब कब चन्द्र चकोर।
भोगी भव-भवितव्यता, कहूँ न तथ्य असत्य;
अब अँगार आँखें करूँ, सखी! सुनाऊँ सत्य।

हँस-हँस हृदय हरूँ धरूँ, धृति-ध्रुव-धर्म-धुरीण;
मान मर्द मैं मुदित मन, करूँ सुपथ-विस्तीर्ण।

लोचन विहीनता

वीर बली वे कहाँ अब, जो थे दुख दमनीय;
बने विसासी त्याग निज, कर-कमान-कमनीय।

सूखे सरसे विरस अब, जो थे प्रतिभा पुंज;
विकसे बारि बिना कहीं, कलित कौमुदी कुंज।

विनय

नियम नेह निजपाल प्रभु !, करो कृपा की कोर;
दीन-दलित-दुख दमन कर, कर दो आत्म-विभोर।

विपत्ति वासर

देख-देख जिनको कभी, लज्जित रहे निकुंज;
रूखे-सूखे वे बने, हरे-भरे वन-कुंज।

करते थे दे छाँह निज, पशु-पक्षी प्रतिपाल;
दिखलाई देते नहीं, अब वे वृक्ष विशाल।

मनोव्यथा

चातक चाहत चोंच निज, स्वाँति-सुधा-सुख-स्वाद;
घिरघिर घन देते उसे, उपल-वृष्टि-अपवाद।

हँस-हँस हेरत हरि रहे, रख-रख सखी ! सनेह;
बन विदेह वे हैं निठुर, निश्चय निस्संदेह।

अकरुण चित्त

प्रीति-पुनीत प्रतीतिबश, दीप-सिखा-सत्संग;
करत भरत अनुराग उर, जर-जर जरत पतंग।

बेचारे विहग

वन-वन विहँग बसें बिबिध, खा-खाकर फल-फूल;
निरपराध बध कर बधिक, करते भीषण भूल।

अन्वेंदना

गौरव-गरिमा, गीत-गुण, जग-जग जगे ज्वलन्त;
आरत भारत की दशा, हुई हीन हे हन्त।
फिर फूलें फल दें वही, वन-वन-बाग-निकुंज,
वर विकसित बन बन बन, प्राणी प्रतिभा पुंज।

अद्भुत

स्थायी भाव—विस्मय अथवा आश्चर्य

देवता—ब्रह्मा

वर्ण – पीत

आलबन—अलौकिक असम्भावित व्यापार विचित्रकार्य कलाप

उद्दीपन—गुण-श्रवण, महिमा-निरूपण, वैचित्र्य-अवलोकन आदि

अनुभाव—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गदगद स्वर और सम्भ्रम आदि

सचारी भाव—वितर्क, आवेग, भ्रांति, हर्ष, चंचलता और औत्सुका आदि

विशेष—कुछ आचार्यों ने इस रस का देवता गन्धर्व माना है।

रहस्यवाद

वैभव-विश्व बिलोक वर, जग-जन-जन हों दंग;
प्रकृति-प्रदर्शन पुण्यप्रद, प्रभु-प्रभुता के अंग।
विटप-विटप, वन-बाग में, प्रभु-प्रभुता परिपूर्ण;
पत्तन-पत्तन पर परम, हरिहरि है विस्तीर्ण।
बढ़ - बढ़ बढ़तीं वल्लरीं, हहर - हहर हहरात;
तरु-तरु तरुनी - सीलता, लिपट - लिपट लहरात।
परिमल पामद-पुंज प्रिय, भेटे भर-भर भाव,
उन सबसे होता प्रगट प्रभु का प्रचुर - प्रभाव।
रूप, रंग, रस समन्वित, सुखमय सद्य सुबास;
पुष्प - पुष्प प्रस्फुट करें, प्रभु का परम प्रकास।
स्वास्थ्य-सुधा सरसा रही, बह - बह वायु विशुद्ध;
अखिल अलौकिक कृत्य ये, समझ परम प्रबुद्ध।

वंश गगन

सर, सरिता सागर, सलिल, विटप-विटप वर-बेल;
वन - वन - बाग - वितानवर, प्रगटाते प्रभु-खेल।
अम्बर-आभा अलौकिक, प्रसरित प्रचुर प्रकाश,
प्रभु-प्रताप प्रगटित करें, सूर्य, चन्द्र, प्रकाश।
चन्द्र-चाँदनी ने किया, उज्ज्वल जग आकाश;
झिलमिल-तारे कह उठे, कहाँ नहीं प्रभु-बास।

भटकत, भूलत, भ्रमत मन, हरि हेरन के हेत;
साधक साधन से स्वयम, प्रभु - दर्शन कर लेत।

मन - मन मन्दिर में रमे, रम्य रमापति राम;
जो जन साधें साधना, देखें रूप - ललाम।

कण-कण, क्षण-क्षण में मिले, शुद्ध सनातन-शक्ति;
जग-जीवन जिससे चले, परम प्रचुर प्रभु-भक्ति।

ललित लोक - लीला करें, किन्तु कृष्ण का रूप;
युग - युग योगीश्वर रहा, रम्य रहस्य अनूप।

वारि-बुंद-वत श्वेत-शुभ, ब्रह्म, जीव जग शुद्ध;
माया मिल मैला बने, कहते यही प्रबुद्ध।

वारि - बुन्द बरसे धरा, श्वेत - श्वेत शुभ रंग;
धरणि - धूल, माया मिले, मटमैला हो रंग।

हास्य

स्थायी-भाव—हास

देवता—प्रमथ अर्थात् शिवगण

वर्ण—श्वेत

आलम्बन—विकृत-आकार, विचित्र वेश-भूषा और अनुपयुक्त वचन आदि के आधार।

उद्दीपन—विचित्र स्वरूप, अव्यवस्थित वेश-भूषा, हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करने वाली हाव-भाव।

अनुभाव—मध्य अथवा ऊँचे स्वर से हँसना, खिलखिलाना, और वदन तथा नेत्रों का विकसित होना।

संचारी भाव—हर्ष, चपलता, निद्रा और आलस्य।

विशेष

कतिपय आचार्यों में हास के छः भेद माने हैं, किन्तु वास्तव में वे हसन क्रिया के ही भेद हैं क्योंकि उनका निवास-स्थान देह ही है।

हास्य

कान्त-कल्पना

कान, नाक, नथुने, नयन, बड़े-बड़े बेढंग;
केश, शेष से लहरते, भौं भीषण भ्रू-भंग।
उन्नत उठे उरोज पर, पहिन-पहिन परिधान;
भामिनी भुतनी-सी सजी, सुभग सलौनी मान।
रूप-राशि रुचि-रुचि रचि, बैठ देव एकान्त;
कान्त-कल्पना कर चली, कामिनि खोजन कन्त।

परिहास परायण

लज-लज लाजत लाज से, सकल शूर सावन्त;
प्रेम-पन्थ पालन करें, रस रख कर रसवन्त।
झुक-झुक झाँकत, झूम झुक, फेर-फेर फरफन्द;
निबा नेह-नय करोगे, कैसे करुणाकन्द ?
नयन नन्चा, नाचे बहुत, बढ़-बढ़ बने विशाल;
कृष्ण ! करोगे किस तरह, प्रेम-पंथ प्रतिपाल ?

कृष्ण ! कथा कह कह अधिक, बने विश्व-वाचाल;
लाज-लगाम लगा करो, नेह-नियम नँदलाल।
बसे द्वारिका-देश में, बन कर कुब्जा-कन्त;
कृष्ण ! सुलभ तुमको कहाँ, अब व्रज-बास-वसन्त।

घुड़की-धमकी

सखि ! सुन-सुन सन्देश सब, हुआ हृदय हत-खण्ड;
अब आँखें अंगार कर, काटूँ कठिन कुपंथ।
दूर द्वारिका-देश बस, बने बड़े श्रीमान;
रहने देंगे हम नहीं, गौरव-गर्व-गुमान।
सकल सराहें स्वस्थ-गति, गुण-गरिमा गुणवन्त;
कौन कहेगा कृष्ण को, कब-कब कुब्जा-कन्त।
राधा भव-बाधा हरें, करें कृपा की कोर;
कृष्ण कृष्ण कह कहाँ कब, करते नित्य निहोर ?
व्रज-बनिताएँ बात की, रहीं धनी निर्द्वन्द्व;
अपना सकते तब उन्हें, जब छोड़ो छल-छन्द।

व्यंग वाण

किए कर्मकुत्सित, कभी, किए न पुण्य-प्रयास;
फिर भी चाहे मूर्ख-मन, वर वैकुण्ठ-विलास।
कलुषित कर्मों की कथा, कही-सुनी भरपूर;
मत्त मूढ़ मन कहे फिर, 'नरक-द्वार-दुख दूर'।

द्रव्य-दान दे, किए कब, दलित-दीन-दुख दूर;
सुयश, शान्ति, सद्गति सुलभ, हो कैसे भरपूर ?
कलाकार, कवि की कभी, नहीं कर सका पूँछ;
चाहे कैसे फिर अरे !, नृप-अमान-सी मूँछ।
द्रव्य-दान देकर किया, कभी न कुछ उपकार;
कैसे बन सकता अरे !, सहज सफल संसार।
साधक साधें साधना, सह-सह कष्ट-अपार;
किन्तु मूर्ख मन मानता, सहज स्वर्ग-सुख-द्वार।
अकर्मण्य बैठा रहे, चाहे सुख, सम्मान;
क्यों न बनें निष्फल सभी, उसके यश-अभियान।
जीवन भर भ्रमता रहा, राग-रंग-रस-मस्त;
अब कहता हो स्वर्ग-पथ, पावन परम प्रशस्त।
कर्म किए कलुषित तथा, लिए नहीं प्रभु नाम;
फिर कैसे होगा सुलभ, स्वर्ग-लोक, सुख-धाम।
जीवन भर करते रहे, परम पाप पाखण्ड;
अब चाहत हो स्वर्ग-सुख, बिना दिए कुछ दण्ड।
फलित फूल, फल की तुला, देकर करता आस;
चढ़ विमान जग से चलें, पाएँ स्वर्ग निवास।
जग-जन जन को ठग करें, कतिपय कलुषित काम;
वे पा सकते किस तरह, सुयश, शान्ति शुभ नाम।

साधु-वेष धर घर स्वयम्, घेरें घर-घर-द्वार;
होना संभव है कहीं, उनसे कुछ उपकार।

वीर रस

स्थायी भाव—उत्साह

देवता—महेन्द्र

वर्ण – कनक-कान्ति-निभ-गौर

आलम्बन विभाव—रिपु का विभव और ऐश्वर्य आदि

उद्दीपन विभाव—रिपु-चेष्टा, ललकार, कड़खा-गान आदि

अनुभाव—सैन्य-संग्रह, युद्ध के अन्य उपादान आदि

सञ्चारी भाव—गर्व-असूया, उग्रता, धैर्य्य, मति आदि

विशेष

कतिपय आचार्यों ने वीर-रस का देवता इन्द्र को माना है।

वीर-रस के प्रायः पाँच भेद माने गए हैं :—

१. धर्म वीर २. युद्ध वीर ३. दानवीर ४. दयावीर और ५. कर्मवीर

१. धर्मवीर

धर्मधारण और धर्म-सम्पादन के उत्साह की पुष्टि करता हुआ वेद-शास्त्र के सिद्धान्तों पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास रख कर कार्य करना धर्म्मवीर अपना कर्तव्य मानता है।

रण रिपु रहते हहर कर, सुन-सुन शब्द-कठोर;
प्रतिपालें प्रण पर रहें, धर्मवीर रण-जोर।

भीरु-भाव भर भर हृदय, हहर-हहर हुँकार;
कम्पित कायर को करे, धर्म-धाक-धुँकार।

बन्धु-विरोध-विवाद हर, करें क्षेत्र विस्तीर्ण;
धरणि धर्म-ध्वज धृति धरें, धार्मिक धैर्य-धुरीण।

२. युद्ध वीर

धरा, धाम, धन धन्य जब, जन्मे जगत सपूत;
जो जन-जीवन में करे, सजग शक्ति संभूत।

कण्ठ-कण्ठ कुण्ठित करे, हरे शत्रु के प्राण;
शोणित सनी सदा रहे, कर की कुटिल कृपाण।

रोप-रोप रण, पाल प्रण, पौरुष-प्रवर प्रचण्ड;
धरें धरा सद्धर्म, सुख, सुभटवीरवर वण्ड;

३. दानवीर

द्रवित दीन-दुख से हुए, गुण-गण-गरिमासीन;
कौन कृष्ण-सा हुआ जग, दानी-प्रमुख-प्रवीण।

कर्ण-कथा कुरुक्षेत्र की, है इतिहास प्रसिद्ध;
बने साधना से स्वयम्, साधक साधन-सिद्ध।

फलित फूल-फल सुरभि से, सरसाते संसार;
विटप-विटप वन-बाग में, दे दे दान अपार।

विश्व-प्रशंसित विविध विध, पावन पुण्य प्रमाण;
सागर, सरिता, सर, जलद, कूप, कुंज के दान।
धरती से मिलता यहाँ, हीरा किए सयत्न;
मणि, माणिक, मुक्ता मिले, सागर से सद्रत्न।
प्रतिपाले पल-पल सकल, विश्वधार कर मौन;
प्रभु समान कोई कहीं, दानवीर है कौन।

४. दयावीर

जग-जन-जन बनते सभी, सुख-साधन संलग्न;
करता जल घर जब जगत, जीव-जन्तु जल-मग्न।
वारिद-वृष्टि बिना कहीं, होता क्या अनुराग;
हरे-भले बनते नहीं, वन-बन, बाग-तड़ाग।
पापी, पतितों की अधिक, हो जाती भरमार;
यदि लेते प्रभुवर नहीं, दया वीरता-भार।
देख-देख हारे जगत, यत्र, तत्र, सर्वत्र;
दयावीर प्रभु-सापरम, मिला नहीं अन्यत्र।

५. कर्मवीर

आलोकित जग को करें, साधक, सिद्ध, सुजान;
कर्म-कसौटी कस कढ़ें, बड़े-व्रती, बलवान।
आलस कर कब पाइए, गुण-गर्वित-गति रम्य;
कर्म किए होता सुगम, कहते जिसे अगम्य।

झेल-झेल झंझट बढ़े, सदा लक्ष्य की ओर;
वही साहसी सुबुधजन, बने विश्व-वर जोर।

साहस से ही साहसी, कर कर्तव्य कठोर;
ठेल-ठेल बाधा विपुल, बढ़े सिद्धि की ओर।

कर्मवीर कर कर्म को, करते जग में नाम;
सिद्धि प्राप्ति पर ही करें, वे सदैव विश्राम।

सूर्य, चन्द्र, दिन-रात निज, करते नियमित कर्म;
मानें करना कर्म का, कर्मवीर निज धर्म।

रौद्र

स्थायी भाव—क्रोध

देवता—रुद्र

वर्ण—अरुण, रक्त

आलम्बन—कदाचारी, कपटाचारी, देशद्रोही या शत्रु

उद्दीपन—शत्रु की कूट-नीति, कार्य-कलाप आदि

अनुभाव—भ्रूभंग, अधर दंशन, परुष भाषण आदि

संचारी स्वभाव—गर्व, चपलता, मोह, आमर्ष, आवेग आदि

विशेषता—उद्दीप्त क्रोध की प्रबलता और पुष्टता रहती है

अहंभाव

रे अभाग्य ! तू ने किया, मुझको पतित-पहाड़;
धूल-धूसरित धरा पर, मारूँ तुझे पछाड़।

फिर-फिर फेरत पातकी, पुण्य-पुंज से दूर;
तेरा गर्व-गुमान अब, कर दूँ चकनाचूर।

भूल-भूल, भ्रम-भ्रम भटक, भर-भर पाप-कलंक;
भाग्य-भोग-भव-भय सकल, त्याग बढ़ूँ निःशंक।

निडरा-नारी

कोकिल कीर कपोत या, ये मदमाती मोर;
बढ़-बढ़ बोलें अब नहीं, मारूँ मार-मरोर।

प्यासा पापी पपिहरा, रटे न पिउ-पिउ-पुरं;
पकड़ करूँगी नीच पर, फीहा-फीहा-फुरं।

चमक-चमक चमके नहीं, बादल-बिजली-बंक;
चित्त चकित चौंके कहाँ, नारी, निडर निशंक।

कुंचित काम-कमान कस, तक-तक तीखे-तीर;
व्यर्थ मारता काम, अब निडरा-नारी वीर।

वाक्य बाण

गौरव, गर्व, गुमान-गढ़, हहर-हहर हहरात;
जब जन-जन दृढ़ दृष्टि दे, करते शत्रु-निपात।

जब रिपु रण रोपे करे, पाहन पटक प्रहार;
बन-बन बनती वीर की, अरुण आँख अंगार।

नीच चीन तृष्णा विवश, करे नहीं अपघात;
हिमगिरि भारत का मुकुट, युग-युग से विख्यात।

भयानक

स्थायी भाव – भय

देवता—काल

वर्ण—श्याम या कृष्ण

आलम्बन—भयंकर दृश्य-दर्शन अथवा भय-भीति

उद्दीपन—भय-जनक कार्य-कलाप आदि

अनुभाव – स्वरभंग, स्वेद, रोमांच और कम्पन आदि

संचारी भाव—आवेग, मोह, त्रास, शंका और मृत्यु आदि

विशेष—कतिपय आचार्यों ने इस रस का देवता यमराज माना है।

इस रस में इन्द्रिय विक्षोभ के साथ भय की पुष्टि होती है। पात्र भी इसके कापुरुष और स्त्री आदि होते हैं।

भय की विभूति

भव-भय भूले भ्रमें जो, कर-कर करुण-कलाप;
तिल को ताड़ वही करें, अतिशय अपने आप।

मन मानें गढ़-गढ़-गढ़े, कल्पित-कष्ट-कुपंथ;
देखें भूत-पिशाच के, गुण-गण-गरिमा-ग्रंथ।

भूति-भीति-भ्रम-भाव को, कर-कर बनें विपन्न;
जग-जीवन उनका रहे, भय-विभूति आसन्न।

विभीषिका

साँचे शूर समर्थ से, जग-जन-जन हों त्रस्त;
करें कार्य कमनीय निज, साधक सिद्ध समस्त।

रिपु रण रहते सिहर सब. सूख समीत सकाय;
वीर-बाँकुड़े बली की, गुण-गण-गरिमा गाय।

गुरु-गिरि-गह्वर छिप छिपे, छद्म-वेष बर बंड;
उदितउदय गिरि से हुआ, ज्यों ही वीर-प्रचण्ड।

प्रलयकाल

महिषा, महिषी, मेदिनी, मणि-माणिक मातंग;
मृग, महिला, महिपाल, मुनि, गए सभी इक संग।

धँसके धन, धरती, धनद, धाराधर, धन-कोष;
धाँय धाँय ध्वनि धरा पर, छाया शिव का रोष।

शिव-समाधि-सुख त्याग कर, कर-कर ताण्डव-नृत्य;
सृष्टि-नाश करके करें, प्रलय काल के कृत्य।

प्रलय प्रकोप

जग-जन-जन, चर-अचर सब, बनें काल के कौर;
युग-युग यह क्रम ही रहा, अचल अखिल शिर मौर।

प्रभु-प्रभाव परिणति परम, अक्षय-क्षय-आरोप,
जल-थल सागर-रूप हो, पाकर प्रलय-प्रकोप।

नरक वर्णन

जाता जब जग-जीव तज, देह, धरा, धन, धाम;
आता उसके काम तब, पाप-पुण्य-परिणाम।

कष्ट कठिन कर पार वह, हो बैतरणी पार;
पाता पापी पतित फिर, खुला नर्क का द्वार।

घोर नर्क-दुख किस तरह, पाता पापी-प्राण;
गिन-गिन गिनवाता इसे, अपना गरुड़-पुराण।

दिन-दिन दुख देकर करें, अन्यों का अपकार;
नर्क-यातना पा करें, पर-पीड़ा-प्रतिकार।

पाकर प्रभुता, पाप-पथ, रचें करें स्वीकार;
उनको मिलता वहाँ पर, उससे कष्ट अपार।

पग पग पर मिलता वहाँ, किए कर्म का भोग;
भोग बिना नहि कट सके, वह दारुण-दुख-रोग।

भोग-भोग भूले सभी, करना तर्क कुतर्क;
पाता जब यम-यातना, पापी रौरव-नर्क।

अग्नि-आँच-तप-तप तपे, विबश विकल बिल्लात;
पापी होता दुखी तब, सोच-सोच अपघात।

यम से उस यम-लोक में, पाकर प्रबल प्रहार;
काटे कष्ट कठोर वह, होकर दुखी अपार।

पापी पाते कष्ट को, किए कर्म अनुसार;
देते ग्रंथ-विशेष सब, ब्यौरा ब्यौरे-वार।

वीभत्स

स्थायी भाव—घृणा

देवता—महाकाल

वर्ण—नील

आलम्बन—मांस, रुधिर, चर्बी, विष्टा, मल-मूत्र आदि

उद्दीपन—दुर्गन्धित-पदार्थों पर मक्खी आदि का भिनभिनाना

अनुभाव—आँख बन्द करना, मुंह फेरना और नाक-सिकोड़ना

संचारी-भाव—आवेग, मोह-मूर्छा आदि व्याधियाँ

विशेष

इस रस में जुगुप्सा अथवा ग्लानि और घृणा की अधिकता रहने के कारण पात्रों में उद्वेगता रहती है।

युद्धभूमि

दौड़-दौड़ द्रुतिबग से, मारें हन-हन हूल;
मेलें रणचण्डी गले, मुण्ड माल अनुकूल।
चौंक चकित चण्डी चितै, चल-चल चारों ओर;
खाली खप्पर खोपड़ी, भर-भर भरे बटोर।
सने सद्य शोणित घने, कर कराल विकराल;
अट्टहास चण्डी करे, फिर फिर फेरे ढाल।
शोणित सनें सभी करे, कौतुक कठिन अपार;
काटें शव, चाटें रुधिर पाटें खड्ड-खँडार।
चाबि-चाबि चर्बी कहीं, काट-काट कर दन्त;
नाचत-गावत भूत-वत, रण-रिपु का कर अन्त।
घायल रोते कलपते, कर-कर हा-हा-कार;
रुधिर, माँस, मज्जा कहीं, खाते शूकर-स्यार।

लोथ-लोथ लुढ़कें कहीं, कतिपय शुण्ड-मुसुण्ड;
कहीं-कहीं कूकर लड़ें, ले ले भागें मुण्ड।
गीध, चील, कौए उड़ें, ले ले लपकें आँत;
नच-नच नाचे युद्ध में, भूत-पिशाच जमात।
बढ़-बढ़ बढ़ते विशद फिर, युद्ध जनित दुख-द्वंद;
जिससे संकल समाज में, हैं छाते छल-छंद।

मानव-तन

आँखें कीचड़ से सनीं, मुख में थूंक-खखार;
रोम-रोम पूरित बदन, अमित भेद-भण्डार।
उदर मूत्र-मल से भरा, मन में हैं कुविचार;
मानव तन दूषित विकृत, इसमें अधिक विकार।

श्मशान भूमि

धँधके धू-धू कर कहीं, कोई चिता विशाल;
कहीं काक-कूकर लड़ें, खेंचें खाली खाल।
कहीं अधजली-चिता से, निकले धुआँ विशेष;
खाते शूकर-स्यार हैं, कहीं पड़ा शव-शेष।

कूकर-शूकर

धरा, धाम, धन हर करे, हाड़-मांस से क्षीण;
उस पिशाचिनीं को कहें, प्यारी परम प्रवीण।

अमृत मानें अधर-रस, रमणी को सुख भूल;
चाहें लेना मधुर-फल, बो कर पेड़ बबूल।
सोचे-समझे मूढ़ मन, करे बुद्धिपरिपाक;
चाटें जूठी पातरें, कूकर-शूकर-काक।

नराधम

हिंसा करके पेट निज, भरें करें मन तुष्ट;
दानव से कम किस तरह, ऐसे मानव-दुष्ट।
दुख दे दे कर दीन को, करते जो अपघात;
रह सकती कैसे यहाँ, उनकी ऊँची बात।

नर पिशाच

बेच-बेच बनिता बनें, जो धनवान विशेष;
खो कर सुयश सदैव वे, जीवित दानव-वेष।
पर-धन, पर-दारा हरे, होता नहीं समर्थ;
अपयश लेकर जो जिए, उसका जीना व्यर्थ।

कलंक कथा

जो जन जग में जन्म ले, रहें स्वार्थ-लवलीन;
बन सकते वे कब यहाँ, गुण-गण-गरिमासीन।
बुरे बोल व्यवहार से, जन-जन को दे कष्ट;
लोक और परलोक को, करें कुमति-वाश नष्ट।

शान्त

स्थायी-भाव—निर्वेद

देवता—शान्ति-मूर्ति विष्ण

वर्ण—शुक्ल

आलम्बन—संसार की असारता और परमात्मा का ज्ञान

उद्दीपन—सत्संग, श्रवण, मनन और अनुशीलन

अनुभाव—रोमांच, पुलकावली और अश्रुपात

सञ्चारी-भाव—हर्ष और प्राणि-मात्र पर दया भाव

विशेष—सद्‌विचारों द्वारा काम, क्रोधादिवेगों पर विजय प्राप्त करके निर्वेद की भावनाओं को पुष्ट करने वाला शान्त-रस होता है।

असार-संसार

संस्मृति स्थायी सर्वदा, जग-जन-जन्म अपार;
आवागमन-अभंग-गति, सुबुध समझते सार।

जग-जन-जीवन तक रहे, घर, धरनी, घर-घाट;
नाता, खाता यहाँ का, टूटे, उठते हाट।

रहें जहाँ के तहाँ सब, सुख-साधन-श्रृंगार;
उड़ जाता जब जीव जग, हो काया निस्सार।

जग-जीवन तक ही रहे, पति-पत्नी का प्यार;
युग-युग यही बिचार दृढ़, है असार संसार।

आत्म-ग्लानि

किए कर्म कलुषित बिबिध, बढ़-बढ़ बने महान;
अपनाया अब भी नहीं, गुणं मयं-गीता-ज्ञान।
हाथ-पाँव निर्बल हुए, ज्योति-हीन निर्दन्त;
फिर भी फिरते फेर में, तृष्णा लिए ज्वलन्त।
भोग-भोग-भोगे बिबिध, वैभव-विश्व-विराट;
मत्त मूढ़ मन पतित-पथ, पाट, पाप-घर-घाट।

निर्वेद

बन्धन-बन्धन बँधा मन, मगन-मस्त निर्द्वन्द्व;
ममता-माया-मोह से, हो न सका स्वच्छन्द।
गृह, गृहिणी, गृह-भार से, हुआ नहीं निर्लिप्त;
त्याग, ताप-तप किए ही, होता है मन तृप्त।
दीन-दलित-दुख दे कभी, कोई कब सुख लेत;
मरी-खाल की धौंकनीं, सार भस्म कर देत।

विराग

वैभव, वाणी, बन्धु पर, पा कर परम प्रमाद;
हूलो-फूलो मन नहीं, बनें अन्त अपवाद।
विश्व-बाँकुडे-वीर सब, हुए काल के कौर;
पृथ्वी पर पाते सभी, तीन-हाथ का ठौर।
बदन, विभूति, बड़ाई-पद, प्रभुता पर कर गर्व;
इतराते, जो जन जगत, मिट जाते वे सर्व।

बन्धु-बैर, छल-क्षुद्रता, करते शीघ्र विनाश;
इन के बश हो कर किया, रावण ने निज नाश।
हय, गज, रथ, रत्नादि सब, ध्वज, धरती धन-धाम;
प्राण-पखेरू जब उड़े, एक न आते काम।
पृथ्वी पति पौढ़े परे, हो पृथ्वी की धूल;
सुबुध शान्ति से सोच कर, करें कार्य अनुकूल।
पर-सेवा है पुण्य-प्रद, पर-पीड़ा है पाप;
मूल-मंत्र मानें हटें, शोक-स्वप्न, संताप।

नवम खण्ड

(अलंकार-अभिज्ञान) (काव्य में अलंकर)

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त;
भूषन बिनु न विराजहीं, कविता, बनिता मित्त।

—कवीन्द्र केशव (कवि-प्रिया-पंचम प्रभाव, छंद १)

राजत रंच न दोषजुत, कविता, बनिता, मित्र;
बन्दक हाला होत ज्यों, गंगाघट अपवित्र।

—कवीन्द्र केशव (कवि प्रिया, तृतीय प्रभाव छंद ४)

अंध बधिर अरु पंगु तजि, नग्न मृतक मतिसुद्ध;
अंध विरोधी पंथ को, बधिर सु सबद विरुद्ध।
छंद बिरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषन हीन;
मृतक कहावै अर्थ बिनु, केसव सुनहु प्रवीन।

—कवीन्द्र केशव (कवि प्रिया, तृतीय प्रभाव छंद ६-७)

वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्

—रस से पूर्ण वाक्य को काव्य कहा गया है। शब्दों द्वारा ही वाक्य का गठन हुआ करता है। शब्दों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्ति रहती है।

—सीधे-साधे अर्थ वाले शब्द अभिधा कहलाते हैं। अभिधा द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो उसको वाच्यार्थ कहते हैं। जैसे कृषक, कृषि कर्म करने वाला। जिस शब्द का अर्थ निकट सम्बन्ध रखने वाले प्रयोजन की रूढ़ि से सिद्ध हो उसे लक्षणा कहते हैं। वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त जिसके द्वारा एक और अर्थ जाना जाए उसको व्यंजना कहते हैं। कभी-कभी इसमें एक वाक्य के अनेक आशय निकलते हैं जैसे—'संध्या हो चली' कहने से कृषक काम बंद करने का संकेत समझेगा और पण्डित वर्ग भजन-पूजन और संध्या करने का। काव्य में रसों की उत्पत्ति भावों द्वारा होती है। भावों के दो भेद हैं। प्रथम स्थायी और दूसरे व्यभिचारी भाव। स्थायी-भाव मानव-मन में सदैव विद्यमान रहते हैं किन्तु व्यभिचारी अथवा संचारी भाव जल-तरंगों की भाँति उठते और तिरोहित होते रहते हैं, इसके अधिक भेद हैं।

—शब्द और अर्थ सम्वन्धी चमत्कार विशेष को काव्य में प्रशंसनीय स्थान प्राप्त है, जिस प्रकार आभूषणों से सुन्दरी का सौन्दर्य दिपने लगता है, उस प्रकार ही भाव-रूपी सौन्दर्य से काव्य-सुन्दरी सुसज्जित हो जाने पर दुगनी आभा दे देती है, इसीलिए काव्य का प्राण रस और अलंकार आभूषण माना गया है।

—भाव और अनुभावों को काव्य का हृदय और अर्थ-गौरव को उसका विशाल-मस्तिष्क शास्त्रकारों ने माना है।

अलंकारों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :

अलंकार के मुख्य तीन प्रकार हैं :

(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

शब्दालंकार—जिस काव्य में शब्द-सौन्दर्य का चमत्कार हो, उसको शब्दालंकार कहते हैं। इसके कई भेद हैं, अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र और पुनरुक्तिवदाभास।

अनुप्रास के दो अंग होते हैं—छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास।

छेकानुप्रास

चैत्र - चाँदनी, प्रिय - पवन, कलकण्ठी के गान;
मन-मन में रस-रँग भरें, मधु-मिश्रित-मुसकान।

वृत्यानुप्रास

अपने अति आराध्य गुरु, बन्दनीय शिरमौर;
जड़-जन जिनकी कृपा से, बनें और से और।

१. उपनागरिका

भव्य भाव भर गुरु हरें, अवगुण अधिक अनेक;
जन - जन जड़ता दूर कर, देते विशद विवेक।

२. परुषा

व्यर्थ वितण्डावाद में, खण्ड - खण्ड कर शक्ति;
उद्दण्डिता जड़-जन करें, अपनी आप अशक्ति।

३. कोमला

सत्संगति से सुजन सब, कर - कर करें प्रकाश;
कीर्ति - कौमुदी का स्वयम्, होता विमल विकास।

वक्रोक्ति

१. श्लेष वक्रोक्ति

आये, स्वागत है तुम्हें, 'इन्द्रायुध घनश्याम;
रखती सदा पपीहरी, स्वान्ति - बुन्द से काम।

१. काकु (ध्वनि) वक्रोक्ति

ब्रज - बनिताएँ तप करें, साधे साधन - योग;
कृष्ण द्वारिका बस करें, कुब्जा से संयोग।
ऊधौं का सन्देश सुन, सब वियोगिनी - नारि;
बोलीं बचन विनीत वे, अपनी दशा बिसारि।
प्रेम - पंथ - पावन पगी, देखें मार्ग न अन्य;
कृष्ण-कथा सुन - सुन बनें, व्रज - बनिताएँ धन्य।

१. इन्द्र-धनुष २. वज्र

यमक

यमकालंकार

सारंग ले सारंग उड़ी, सारंग गरजे घोर;
सारंग जाय न गाँठ से, सारंग करे न शोर।

—साँप (सारग) लेकर मोरनी (सारंग) उड़ी, इसी बीच बादल (सारंग) जोर से गरजने लगा उसे सुन कर मोरनी बोलने की इच्छा रखती हुई भी न बोली क्योंकि साँप (सारंग) के मुंह से गिर जाने का भय था अतएव वह चुप ही रही।

लाटानुप्रास

चिंता कर क्या करे जब, गृह सुलक्षणी नारि;
चिंता कर क्या करे जब, गृह कुलक्षणी नारि।

—घर में यदि गृहिणी अच्छे लक्षणों वाली है तब चिंता करने की आवश्यकता नहीं, वह सब कार्य सुचारु रूप में कर लेगी। घर में यदि गृहिणी बुरे लक्षणों वाली है तब चिंता करने से कोई काम बनने का नहीं है अतएव उस दशा में भी चिंता करना व्यर्थ है।

श्लेष

अव्यय अक्षर जगत् में, ईश्वर शब्द समान;
दोनों अपने एक से, रखते सुदृढ़ विधान।

ईश्वर पक्ष में—

—संसार में अविनाशी परब्रह्म ईश्वर का ज्ञान और सुदृढ़ विधान दोनों ही निश्चित और अटल है।

शब्द पक्ष में—

—संसार में परब्रह्म परमात्मा की भाँति शब्दों का भी अपना निश्चित और अटल ज्ञान और विधान होता है।

पुनरक्तवदाभास

देखने में एक अर्थ वाले, भिन्न पद, पर वास्तव में अर्थ एक न हो कर दूसरा हो।

तेरे तीखे तेज पर, पाए शत्रु न त्राण;
मर्द मेलि महि डारदे, कर-करवाल-कृपाण।
गुण में तीनों एक सम, कविता, कला, कृपाण;
अमर करे कविता, कला, ले कृपाण, अरि-प्राण।

इति शब्दालंकार

अर्थालंकार

—जहाँ शाब्दिक के स्थान में आर्थिक चमत्कार हो, वहाँ अर्थालंकार होता है।

उपमा—

१. श्रौती (जहाँ पर यथा, ज्यों, जैसे, इव, सी, से) (सों, लौं पद उपमा के द्योतक हों, वहाँ श्रौती होगी।)

अरुण कमल से खिल गए, राधा-नयन-विशाल;
बड़े भाग्य दर्शन दिए, आए श्री नंदलाल।

२. अर्थी (जहाँ पर तुल्य, समान, सम, सदृश, उपमा) (वाचक शब्द हों वहाँ आर्थी होगी।)

शूर, सिंह सम समर में, मारें रिपु वरवण्ड;
युग-युग उनकी अमर हो, रहती कीर्ति अखण्ड।

लुप्तोपमा

१. धर्म लुप्ता—

मधु-मिश्रित से सरस स्वर, बंशी-बोल-विशेष;
सखि ! सुन सकते अब कहाँ, गए कृष्ण परदेश।

२. वाचक धर्मलुप्ता—

व्रज बनिताएँ परस्पर, कहतीं भर-भर श्वांस;
देखें मुख-शशि पुनः हम, हो कैसे विश्वास।

३. उपमान धर्म लुप्ता—

राधा विह्वल कहे यह, वे विदेश चितचोर;
जिनके मैं मुखचन्द्र की, चेरी चतुर चकोर।

मालोपमा

शोभित बदन सरोज सम, रम्य राशि रमणीय;
चारु-चाँदनी सी दिपै, राधा-द्युति कमनीय।

उपमेयोपमा

राधा-मुख-पंकज परम, पंकज राधा-रूप;
एक दूसरे के सरिस, हैं दोनों अनुरूप।

अनन्वय

विश्व-बंद्य पावन परम, प्रस्तुत प्रबल प्रमाण;
भारत भव्य महान है, अपने आप समान।

१. प्रतीप

बिखर-बिखर रवि-रश्मियाँ, निखर-निखर शशिव्योम;
श्याम अंग दर्शित करें, निबिड़ प्रखर तम-तोम।

२. प्रतीप

प्रकृति-प्रभा पर गर्व कर, ऐंठो मत कश्मीर;
नन्दन-वन निशदिन चले, सुरभित सुखद समीर।

३. प्रतीप

दमक-दमक दुर-दुर दुरै, घिर-घिर घन के संग;
देख देख दामिनि स्वयम्, कृष्ण-राधिकारंग।

४. प्रतीप

जब राधा-मुख-छबि करे, चन्द्र-चारुता मन्द;
समता उसकी क्या करे, कुटिल-कलंकी-चन्द।

५. प्रतीप

सुधा सरिस सुख कर विदित, राधा-नयन सुचारु;
पाई जिनसे ज़गत ने, चन्द्र-चाँदनी-चारु।

रूपक

रूपक दो प्रकार का होता है अभेद रूपक और ताद्रूप—

अभेद रूपक के तीन रूप होते हैं :—सम अभेद, अधिक अभेद और और न्यून अभेद।

समअभेद रूपक के तीन रूप होते हैं :--सावयव, निरवयव और परम्परित।

सावयव सम अभेद रूपक

हिमगिरि शोभित मुकुट शुभ, प्रकृति-प्रिया-परिधान;
विश्व-बंद्य मानी गई, भारत-भूमि महान।

निरवयव सम अभेद रूपक

इसके दो भेद हैं शुद्ध और मालाकार शुद्ध-निरवयव—

पिता-प्रेम पाते सभी, पुत्र, सुपुत्र तथैव;
मिलता किन्तु कुपुत्र को, माता-मोह सदैव।

मालाकार निरवयव

ऊधौ ! भ्रम भूलो नहीं, हैं हम आत्म-विभोर;
एक कृष्ण-मुख-चन्द्र की, चौकस चन्द्र-चकोर।
कृष्णचन्द्र-मुख-चन्द्र की, हम सब चन्द्र-चकोर;
दोनों दृग निश दिन रहें, ऊधौ ! उनकी ओर।

परम्परित रूपक

ऊधौ ! व्रज-बनिता नहीं, जानें योग-सुयोग;
कृष्ण बिना है नर्क सम, सुखद स्वर्ग-संयोग।
पड़ जहाँ श्रीकृष्ण के, चरण-चारु-सुख-पुंज;
भक्त भ्रमर भर भाँवरें, मानें उसे निकुंज।

अधिक अभेद रूपक

सिन्धु-तात, विष-बन्धु है, गात मलिन सकलंक;
राधा-मुख निशदिन दिपै, छिप-छिप रहत मयंक।

न्यून अभेद रूपक

बंशी-वैभव विश्व में, जन-जन करें बखान;
कुंठित बनती वह स्वयम्, समझ राधिका-मान।

ताद्रूक रूपक

सर, सरिताएँ सरस सब, वर वन-बाग-तड़ाग;
भारत-भू भरती हृदय, स्वर्ग सरिस अनुराग।

परिणाम अलंकार

राधा वर, बाधा-हरण, चरण-चारु चित्त-चोर;
भक्ति-भाव भर भक्त को, करते आत्म विभोर।

उल्लेख

एक ही वस्तु को अनेक जन अनेक प्रकार से देखें अथवा एक ही यक्ति अनेक प्रकार से देखें

थम-भेद —

कृष्ण-कान्ति को कंस ने, समझा काल-स्वरूप;
देखा भक्तों ने वही, सुखद ब्रह्म का रूप।

द्वितीय-भेद —

भारत-उर जग जानता, है बुन्देल-प्रदेश;
युग-युग बन-बन, बन गए, इसके सुन्दर वेष।
राष्ट्र-सुकवि, वर-वीर-नृप, खेले इसकी गोद;
इसके बासी शान्ति में, पाते परम प्रमोद।

अतिशयोक्ति

प्रथम-भेद (रुपकातिशयोक्ति)

धूल धूसरित हो नहीं, विकसित पुष्प-पराग;
प्रभुवर! पा जाए अगर, चारु-चरण-अनुराग।

भेदकातिशयोक्ति

नयन, नाक, मुख, कान को, पा कर एक समान;
देखें, कहें, सुनें जगत, जाने जात सुजान।

सम्बंधातितशयोक्ति

उच्च कलश हैं भवन के, छूते विमल अकास;
किन्तु कहाँ होते वहाँ, पावन-पुण्य-प्रयास।

असम्बंधातिशयोक्ति

कथनी-करनी एक कर, हुए जगत विख्यात;
संत-विनोबा का सुयश, बढ़ा, न विश्व समात।

अक्रमातिशयोक्ति

विश्व-बंध-बापू किए, कार्य कठिन सम्पन्न;
किया राष्ट्र स्वाधीन, कर-जन-जीवन उत्पन्न।

चपलातिशयोक्ति

शिव समान दाता कहाँ, वरदानी, सुख-पुंज;
जिनको आराधे कटें, कठिन कलुष. दुख-कुंज।

अत्यंतातिशयोक्ति

लंका तो पीछे जली, कौतुक देखा एक;
भाग-भाग भय से मरे, दानव-वृन्द अनेक।

उत्प्रेक्षा

जहाँ अन्य वस्तु, हेतु और फल मैं दूसरी वस्तु हेतु और फल की सम्भावना कर ली जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

इसके दो भेद हैं वाच्या और प्रतीयमान। इन दोनों के तीन-तीन रूप होते हैं :—

वस्तूत्प्रेक्षा, हेतु उत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा

वस्तुत्प्रेक्षा (वाच्या उक्त विषया)

कृष्ण चन्द्र ने जब किया, केशर-तिलक विशाल;
बना कसौटी कनक कस, श्याम-सलोना-भाल।

उक्त विषया प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा

शोभित सुन्दर श्याम-मुख, आभा अधिक अनुप;
भक्त-मधुप देखें परम, रम्य-राशि श्री रूप।

अनुक्त विषया

सखि ! सब ये दुख-प्रद बनी, दे-दे द्विगुण-विराग;
मानो मत्त मयंक की, किरणें देतीं आग।

हेतु उत्प्रेक्षा

जहाँ सत्य हेतु में दूसरा हेतु मान कर उत्प्रेक्षा की जाय। इसके दो भेद हैं :—

सिद्ध विषया और असिद्ध विषया

सिद्ध-विषया हेतु उत्प्रेक्षा --

श्याम-अलक, घिर मुख-प्रभा, पावन परम प्रशस्त;
घिर घन से दामिनि-दमक, दमके व्योम-समस्त।

असिद्ध-विषया हेतु उत्प्रेक्षा--

ऊँचे उठ-उठ मद-भरे, बढ़-बढ़ पेड़-खजूर;
मानो नभ-नक्षत्र को, छू लेंगे भरपूर।

फलोत्प्रेक्षा

वास्तव में जो फल नहीं उसे फल-भाव से कथन किया जाय, इसके भी दो भेद हैं :—

असिद्ध विषया फलोत्प्रेक्षा

पग-पग पर मग-धूल को, पद-पद रौंदत देख;
गिरवर निज शिर पर धरी, धरणी-धूल विशेष।

असिद्ध विषया फलोत्प्रेक्षा

तप-तप ताप प्रचण्ड जब, जग-जन करते शोर;
बारि-बुन्द बन प्रभु तभी, काटें कष्ट कठोर।

सापन्हव उत्प्रेक्षा

अपन्हुति सहित उत्प्रेक्षा होने पर सापन्हव उत्प्रेक्षा होती हैं।

दलित-दीन-दुख दूर कर, लें आनन्द विशेष;
नही नारि-नर, जगत-जन, जानें हैं सर्वेश।

व्याज-स्तुति—निन्दा गर्भित स्तुत अथवा स्तुति गर्भित निन्दा जहाँ पर हो उसे व्याज-स्तुति कहते हैं।

यथा :—

स्तुति में निन्दा

ऊधो ! साधक, सिद्ध तुम, हम सब निपट-गँवार;
तुम्हें सुलभ साधन सभी, हमें कृष्ण का प्यार।

गुणी किए निर्धन निपट, अगुणी धनिक विशेष;
लीला अपरम्पार प्रभु !, पार न पाए शेष।

निन्दा में स्तुति

मन मोहन मोहें न मन, जगमोहन है नाम,
दूर द्वारिका बस बने, निर्मोही-घनश्याम।

स्मरण (स्मृति)

पूर्व में अनुभव की हुई स्मृति के स्मरण को स्मरण अलंकार माना है :—

विकसित देख प्रसून ये, हरित-हरित वन-कुंज;
वर बस याद दिला रहे, व्रज-वन-प्रतिभा पुंज।

भ्रम (भ्रान्ति)

और वस्तु में दूसरी वस्तु का भ्रम हो :—

मंजुल-मुख-मकरन्द पर, मँडराते अलिवृन्द;
मान कमल-कमनीय को, राधा-छबि-सुख कन्द।

संदेहालंकार—जहाँ वस्तु के विषय में सन्देह व्यक्त किया जाए कि यह है या वह है। इसके दो भेद हैं :—

भेदोक्ति संशय और अनुक्ति भेद संशय।

अनुक्तिभेद संशय—

वन-वन बीनत बेर वे, छिप-छिप करते बात;
राणा! रण-रिपु रहें अब, सब वन-वन विल्लात।

अनुक्ति भेद संशय—

पल-पल पर पापिन फिरै, फरफरात सब ओर;
है क्या काली कोकिला, कूकै जो रस-बोर।

अपन्हुति—सत्य बात को छिपाते हुए जब बात कही जाए तब अपन्हुति अलंकार होता है। इसके भेद हैं :—शुद्ध अपन्हुति, कैतव अपन्हुति, हेतु अपन्हुति, पर्यस्तापन्हुति, भ्रान्तापन्हुति और छेकापन्हुति।

शुद्ध अपन्हुति—

व्यापक बिश्व निरंजन, घट-घट जिसकी पैठ;
कौतुक कर तोड़ें सुघट, पनघट-पनघट बैठ।

कैतव अपन्हुति—

राधा-मुख-छबि-छितिज पर, रुपै न दृष्टि निशंक;
करत निछावर उदित हो, मानो मुदित मयंक।

हेतु अपन्हुति—

होते मन-मन मत्त जब, व्यापक विषय अनंग;
जग-जन-जन उन्मत्त बन, करते प्रकट प्रसंग।

पर्यस्तापन्हुति—

धन, वैभव कब कर सकें, परिपूरण परितोष;
जन-जन-जीवन हो सफल, आए मन संतोष।

भ्रान्तापन्हुति—

रमणी रम्य रहें वही, कभी चण्डिका रूप;
रूप-राशि हैं किन्तु ये, बनतीं काल-स्वरूप।

छेकापन्हुति—

तिमिर-तोम हर अरुण कर, अरुणोदय अभियान;
वीर बली विरसिंह सखि !, नहीं, सूर्य भगवान।

दीपक—जहाँ प्रस्तुत अप्रस्तुत दोनों का एक धर्म वर्णित हो :—

साधक, सिद्ध कुसंग से, नृप कुमंत्र से और;
बिना विनय, नय नष्ट हो, गुण-गरिमा शिरमौर।

कारक दीपक—

हरी - हरी वन -बल्लरी, परिमल - पुष्प - पराग;
प्रकृति-प्रिया प्रतिपल भरे, मन-मन में अनुराग।

आवृत्तिदीपक—

—पदावृत्ति (भिन्नार्थक पदों की आवृत्ति)

साधक, साधु सदैव सब, भजें धरें प्रभु ध्यान;
अनख आलसी अल्पमति, भजें दूर भय मान।

—अर्थावृत्ति (एक ही अर्थ में भिन्न पदों की आवृत्ति)

हृदय शान्ति, सुख मिले तब, पूजै मन-अभिलाष;
चित्त चाह सुस्थिर रहे, हो जब बुद्धि-विकास।

—पदार्थावृत्ति (एक ही पद की एक ही अर्थ में आवृत्ति)

जप, तप कुछ बनता नहीं, बने न साधन योग;
किस प्रकार सद् भक्ति का, पाऊँ प्रभु ! संयोग।

प्रतिवस्तूपमा

उपमान और उपमेय वाक्यों का पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा एक ही धर्म व्यक्त किया जाए—

राजत सरवर में कमल, शोभित सर सह पद्भ;
भ्राजत घर, घरनी-सुघड़, छाजत घरनी सद्म।

दृष्टान्त—जहाँ दोनों वाक्यों को भिन्न-भिन्न अर्थ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से कहा जाय—

समझें साहित्यिक स्वयम्, काव्य-कला के बोल;
सुबुध पारखी, परखते, मणि-मुक्ता अनमोल।

कुल उज्ज्वल करते सुसुत, नहीं कुपुत्र अनेक;
निशितम, तारागण नहीं, हरे चन्द्रमा एक।

निदर्शना—सदृश वाक्यार्थों का एकता से आरोप हो वहाँ प्रथम निदर्शना होती है।

जप, तप, संयम, साधना, की न कभी प्रभु-भक्ति;
फिर भी चाहे मूढ़ मन, पाए सद्गति शक्ति।

द्वितीय-निदर्शना—

अनहित करता अन्य का, चल कर चाल-कुचाल;
कृष्ण-पूतना-काण्ड-फल, पाता वह तत्काल।

तृतीय-निदर्शना—

दारुण दुःख दावाग्नि दे, बाँस-वंश-संघर्ष;
वन-वन पक्षी, पशु, पथिक, पा जाते अपकर्ष।

सहोक्ति—'सह' शब्द के साथ जहाँ एक ही वाक्य दो अर्थों को पूरा करें।

कठिन-कसौटी कढ़ सधें, कलाकार के कर्म;
विद्या से नय, जय सहित, सुधरें जीवन-धर्म।

विनोक्ति—जहाँ पर प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना हीन व रम्य हो

राधा-माधव-मधुरिमा, मधु-मिश्रित-मुसकान;
व्रज-बनिताओं को बने, अब सब स्वप्न समान।

समासोक्ति

प्रस्तुत वृतान्त के वर्णन में श्लिष्ट विशेषणों की समता के बल से अप्रस्तुत वृतान्त का स्फुरण हो।

व्यतिरेक—उपमान से उपमेय में कोई बात विशेष या न्यून दिखाई जाय।

ब्रह्मा से सत्कवि सुदृढ़, रखते निर्मल दृष्टि;
षट्गुण से ब्रह्मा रचें, नव-गुण कवि की श्रृष्टि।

परिकर—किसी विशेष अभिप्राय के कारण जहाँ विशेषणों का वर्णन हो—

लक्ष्मण के सुनकर बचन, बोले राम[1] सक्रोध;
शिव-पिनाक गर्वित गहन, नहीं तुझे है बोध।

परिकरांकुर—साभिप्राय विशेष्यों का जहाँ वर्णन हो।

औघड़दानी-शिव सदा, देते दिन-दिन दान;
उन समान कोई नहीं, दाता, देव महान।

श्लेष—जहाँ एक पद में अनेक अर्थ हों

मित्र सदृश सुख कर, समर, बने वही अरिकाल;
अमर करे जग-जंग में, काव्य, कला, करवाल।

—काव्य, कला और करवाल (तलवार) तीनों ही मित्रों के समान सुख देने वाली हैं, किन्तु युद्धस्थल में तीनों ही शत्रुओं का नाश भी

---

१ परशुराम

करती हैं। संसार में ये तीनों ही मानव को अमरत्व भी प्रदान करती है।

अप्रस्तुत प्रशंसा—प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत का वर्णन किया जाय। इसके पाँच भेद हैं :—

(१) **कारण-निबन्धना**—

हित-अनहित करता प्रकट, कर्म-कसौटी-रूप;
निर्धारें खोटा-खरा, कस कर कनक-स्वरूप।

(२) **कार्य-निबन्धना**—

ऊधौ! सुन सन्देश सब, हैं हम दीन-मलीन;
थिर हो राधा-मन कहाँ, रहें कृष्ण-लवलीन।

(३) **सामान्य-निबन्धना**—

हनूमान गिर ले उड़े, मिला न गिरधर नाम;
गोवर्द्धन धर कर हुए, गिरधारी घनश्याम।

(४) **विशेष-निबन्धना**—

बिना नीर निष्प्राण हो, तजती मीन शरीर;
किन्तु नीर ने मीन की, अनुभव की कब पीर।

(५) **सारूप्य-निबन्धना**—

दुख-प्रद अब सब हो गए, व्रज-वन-बाग समस्त;
बिना कृष्ण अब सुख कहाँ, हुए सुदिन सब अस्त।

प्रस्तुतांकुर—जब प्रस्तुत में उलाहना पाया जाय

सरिते ! मिली समुद्र में, पाया कौन महत्व;
नाम, रूप, गुण गए सब, खोया अपना सत्व।

पर्य्यायोक्त (प्रथम)—जहाँ व्यंग से इच्छित भाव प्रकट हो—

दीन-सुदामा पग परसि, कहा कृष्ण रस-बोर;
सखे ! कहाँ भटके फिरे, अब आए इस ओर।

पर्य्यायोक्त (द्वितीय)

ऊधो ! हम व्रज नागरी, प्रेम-पंथ-अनुरक्त;
कृष्ण सदा रहते हृदय, फिर हम कहाँ अशक्त।

आक्षेप (प्रथम)

प्रथम किसी बात को कह कर फिर निषेध किया जाय—

ऊधो ! जग-बाधा हरण, राधा-पद कमनीय;
तुम मानो अथवा नहीं, हम हैं अनुकरणीय।

आक्षेप (द्वितीय)

ऊधो ! जानो आप तो, हमको निपट गँवार;
हम जैसी प्रण-पालिनीं, जानत सब संसार।

आक्षेप (तृतीय)

ऊधो ! मिलता भाग्य से, सुख-दुख का संयोग;
क्या सुयोग यह, कृष्ण सँग, करती कुब्जा भोग।

विरोधालंकार

जहाँ वास्तव में विरोध न होने पर भी विरोध प्रतीत हो --

देख लुनाई कृष्ण की, आँखों ने सुख मान;
राधा ने रस-रंग में, किया कृष्ण-गुण-गान।

विभावना

प्रथम-विभावना—जब बिना कारण के कार्य हो

प्रभु-प्रताप पावन परम, पार न पाएँ शेष;
हाथ-पैर के बिना ही, करते कार्य विशेष।

द्वितीय-विभावना—(कारण पूरा न होने पर भी कार्य हो)

प्रत्यंचा के बिना ही, चल जाते हैं वाण;
नयन-तीर से मनुज के, बिंध जाते हैं प्राण।

तृतीय-विभावना—(कार्य की रोक होने पर भी कार्य हो)

शर-शैय्या पर शान्ति से, किया कर्ण ने दान;
हुए प्रशंसित विश्व में, दानी-वीर-महान।

चतुर्थ-विभावना—(अन्य कारण से कार्य हो)

पाएँगे जन-जन नहीं, क्या स्वदेश-अनुराग;
क्या सरसाएगा नहीं, पुष्पित-पद्म-पराग।

पंचम-विभावना—(विरुद्ध कारण से कार्य)

सखि ! शशि-किरणें तप्त हैं, या मुझको भ्रम-भूत;
विरह-वेदनाएँ भरें, भव-भय-भस्म-भभूत।

विशेषोक्ति

प्रबल कारण होने पर भी कार्य न हो—

पुत्री श्री वृषभानु की, वर व्रज रानी नारि;
विरह-वेदना-दुख सहे, व्रज तज गए मुरारि।

असंभव

जहाँ अनहोनी बात का उल्लेख हो—

प्यास बुझे किसकी कहाँ, पीकर रूप - पियूष;
होती शान्त सदैव ही, भोजन पाए भूख।

असंगति—कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो—

असंगति प्रथम :

वासुदेव व्रज से चले, कंस - निमंत्रण मान;
मथुरा में होने लगे, अशकुन अधिक महान।

असंगति द्वितीय : (कहीं करने का कार्य कहीं किया जाय)

चित्रकूट में भुजा भर, भेंटे सब श्रीराम;
किन्तु स्वर्ग में देवता, डरें देख शुभ काम।

असंगति तृतीय : (करने वाले कार्य के विरुद्ध कार्य हो)

तिमिर-तोम तप कर हरे, रवि निज भरें उदोत;
किन्तु सराहें कब उसे, जग उलूक खद्योत।

जग - जन - जीवन प्राप्त कर, करना ये सद्कर्म;
किन्तु स्वार्थ - बश भ्रम भटक, करते रहे अधर्म।

विषम

विषम प्रथम : बिपरीत होने से जहाँ पर संबंध न घटे—

कहाँ कृष्ण कमनीय वर, कहाँ पूतना दुष्ट;
सद्गति दी श्रीकृष्ण ने, उसे मार कर मुष्ट।

विषम द्वितीय : (कर्ता को कार्य का विपरीत फल मिले)

अनभल करके मनुज को, मिले कहाँ सुख शान्ति;
कर्म-निषिद्ध किये सदा, मिलती घोर - अशान्ति।

विषम तृतीय : कारण के गुण से कार्य का गुण और कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया विरुद्ध हो—

ऊधौ ! कुब्जा - कृष्ण के, सुन - सुन कर सन्देश;
पके कान, छलनी हुए, हारे हृदय - प्रदेश।

सम

सम प्रथम : (जहाँ दोनों का ठीक-ठीक सम्बन्ध हो।)

अधम उधारन आप प्रभु, मैं अधमोधम दीन;
आप पुरातन परम प्रभु, मैं मतिमन्द मलीन।

सम द्वितीय : (कार्य और कारण की समता हो)

मान बढ़ाते मनुज का, विद्या, विनय, विवेक;
जग - जन अपना कर इसे, बने धन्य प्रत्येक।

सम तृतीय : (बिना बिघ्न के कार्य हो)

ऊधौ ! रच-रच रास हम, वर्ष - वर्ष रस - रंग;
खेलें हिलमिल हर्ष युत, कृष्ण - राधिका संग।

विचित्र अलंकार

—किसी फल को प्राप्त करने के लिए बिपरीत प्रयत्न करना;

करते हैं निज धर्म पर, जो सहर्ष बलिदान;
सुयश, शान्ति पा कर वही, बनते अमर निदान।

प्रहर्षन

—जहाँ बिना प्रयत्न के इष्ट सिद्ध हो—

(१) **प्रथम प्रहर्षन :**

मिले निराशा में कभी, आशा - प्रद - संतोष;
प्रभु-प्रताप से स्वयम् सब, मिटे भाग्य का दोष।

(२) **द्वितीय प्रहर्षन :**

पूत - कामना कर किये, कुछ - कुछ कभी प्रयास;
पूत, पूत - सुत पा गये, प्रभु पूरी सब आस।

(३) **तृतीय प्रहर्षन :**

प्रभु-करुणा अद्भुत अधिक, जान सके कवि कौन;
दर्शन दे करते सफल, भक्त - प्रार्थना - मौन।

विषादन

—जहाँ इच्छा के बिरुद्ध फल मिले—

बनना चाहा छत्रपति, बन कर परम प्रबुद्ध;
किया नष्ट परिवार निज, दुर्योधन कर युद्ध।

अधिक

—जहाँ बड़े आधार का छोटा आधेय और छोटे आधेय का बड़ा आधार हो।

व्यापक ब्रह्म विशिष्टवर, आ कर स्वयम् सदेह;
कृष्ण किये कौतुक बिबिध, नन्द - यशोदा - गेह ।

अन्योन्य

शोभित शशि से निशि तथा, निशि में शशि द्युतिमान;
चारु चाँदनी चन्द्र से, जानत जगत महान ।

व्याघात

हितकारी वस्तु को अहितकर बतलाना—

जग-रक्षक, भव-भय-हरन, विष्णु-सुदर्शन-चक्र;
खल- दल - दलने को बने, विषधर - बैरी - चक्र ।

कारण माला

जहाँ पूर्व कथित-कथित अर्थ, पीछे पीछे कहे हुओं का कारण हो—

स्वयम् सिद्ध अनुराग में, आ जाता है त्याग;
त्याग किए सद्गति मिले, सद्गति से सुख-भाग ।

एकावली

—क्रम से अनेक अर्थों को विशेष्य—विशेषण भाव से स्थापित या निषेध—

ज्ञान वही जिससे जगें, जन - जीवन के कर्म;
कर्म सार्थक सिद्ध वह, जो राखे निज धर्म ।

सार

—क्रमशः एक बात से दूसरी बात का उत्कर्ष प्रकट करना ।

प्रथम कल्पना कर किया, स्वप्न संग संतुष्ट;
अब प्रत्यक्ष प्रभाव प्रभु, किया स्वयम् परिपुष्ट ।

यथासंख्य

—जहाँ क्रमशः व्याख्या करके क्रम से मिला दिया जाय।

कविता, कला, कृपाण के, ज्ञानी, धनी - विशेष;
वीर, बली, विद्वान थे, वीरसिंह उरछेश।

पर्य्याय

जहाँ एक में अनेक अथवा अनेक में एक क्रमशः रहे।

युवा - बाल, नर - नारि सब, देख राम का रूप;
मंत्र-मुग्ध मोहित हुए, माना त्रिभुवन - भूप।

परिवृत

जहाँ एक वस्तु दे कर, दूसरी वस्तु बदले में ली जाए।

साधक साधन से स्वयम्, बन जाते हैं सिद्ध;
जैसे जन-सेवा किए, जग-जन बनें प्रसिद्ध।

परिसंख्या

अन्य स्थानों में निषेध करके किसी वस्तु का केबल एक ठौर पर वर्णन किया जाए—

राम-भक्ति गुरु-ज्ञान युत, यदि नर करे सयत्न;
पाये निश्चय सिद्धगति, बन जाए नर-रत्न।

विकल्प

जहाँ दो तुल्य बल वाली विरुद्ध बातों में या तो यह होगा या वह ऐसा वर्णन हो—

प्रभु ! पाएँ पद-पद्म की, चमक-चाँदनी चारु;
अथवा अधमोधम विवश, त्यागे सब संसार।

प्रौढ़ोक्ति

जहाँ उत्कर्ष का अहेतु, हेतु कल्पित किया जाए—

कलित-कलिन्दी कूल के, कृष्ण-कथा के संग;
दिन-दिन दूने हो बढ़े, पावन प्रणय-प्रसंग।

सम्भावना

यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है—

ऊधौ ! यदि तुम कृष्ण के, देते सुख-सन्देश;
व्रज-बनिताओं के सभी, खिलते हृदय-प्रदेश।

बिक-स्वर

विशेष को सामान्य से पुष्ट करके फिर विशेष का कथन हो—

हुई राधिका मलिन-मन, दुख-प्रद कृष्ण वियोग;
जल घटते जैसे रहे, मीन मलिन दुख-भोग।

मिथ्याध्यवसति

जहाँ झूठ शब्द स्पष्ट न कह कर झूठी रीति से वर्णन किया जाए—

नीम-निबौरी हों मधुर, हो गूलर में फूल;
कोटि उपाय किये कभी, हो न दुष्ट अनुकूल।

तुल्य-योगिता

जहाँ अनेक उपमेय अथवा अनेक उपमानों का एक ही धर्म कहा जाए—

व्रज-कदम्ब, लौनीं-लता, कालिन्दी के कूल;
कृष्ण बिना रूखे लगें, हुए सभी प्रतिकूल।

अल्प

आधेय की सूक्ष्मता से आधार की सूक्ष्मता कही जाए—

काव्य, कला-कृतियाँ सुदृढ़, बृहद् विन्ध्य-इतिहास;
वीरसिंह तेरा सुयश, करते सभी प्रकाश।

जगत जानता 'मनुज-तन, जाता जग से नग्न';
फिर भी माया-मोह में, मानव रहे निमग्न।

समुच्चय

जहाँ एक ही कारण, कार्य करने को समर्थ हो, तो भी और कारण मिल कर कार्य पूरा करे—

(१) प्रथम समुच्चय—

गंगा, यमुना, सरस्वती, संगम तीर्थ विशेष;
भरता मन-मन में महत्-स्वस्थ्य-शान्ति-सन्देश।

(२) द्वितीय समुच्चय—

दुख-प्रद सब को हुआ व्रज, जो था शान्ति-प्रदत्त;
व्रज-बनिताएँ विकल बन, वन-वन फिरें प्रमत्त।

समाधि

संयोगवश अन्य कारण के मिलने से कार्य सुगम हो जाय।

व्रज पर रूठे, बरस घन, किया इन्द्र ने कोप;
कृष्ण मान-मर्दन किया, गोबर्द्धन-आरोप।

प्रत्यनीक

जहाँ बलवान से बस न चले उसके पक्षपाती पर क्रोध करे।

गधा न जीते गधैया, फ़िर भी अपना जोर;
करे रेंगटा पर प्रकट, उसके कान मरोर।

ललित

—अवसर निकल जाने पर किसी प्रस्तुत व्यक्ति को पूछताछ करना—

मन-मन्दिर में हरि बसें, समझ न मानें देव;
भटक, भूल, भ्रम बश फिरें, पूजें गति-अवरेव।

अर्थान्तरन्यास

जहाँ सामान्य से विशेष को और विशेष से सामान्य को समर्थन किया जाय—

दलित-दीन-दुख हर करो, जन-जन पर उपकार;
जिससे उनका बन सके, सब सुखमय संसार।

काव्यार्थापत्ति

जहाँ यह कहा जाय, 'जो ऐसा कर सकते हैं, उनके लिए ऐसा करना कौन-सी बात है'—

घर-घरनी जिनके नहीं, डोलें दिन-दिन द्वार;
उन नारद को क्या कठिन, जानत सब संसार।

काव्यलिंग

जहाँ युक्ति से वाक्यार्थ और पदार्थ का समर्थन किया जाय—

जग-जन-जन जिसके करें, गुण-गण-गौरव-गान;
विश्व-वंद्य उन भरत की, महिमा मही महान।

उल्लास

जहाँ एक के गुण दोषों से दूसरे के गुण-दोष हों—

ताप तपे तपता स्वयम्, बह चलता नवनीत;
पर-दुख देखें, हों द्रबित, सज्जन-उर की रीत।

तिरस्कार

गुणवाली वस्तु को भीं किसी दोष से त्यागा जाय--

जोड़-जोड़ जन, धन धरें, व्यर्थ-अर्थ-अनुराग;
मिलते मरने पर स्वयम्. कफन काष्ट अरु आग।

अवज्ञा

और के गुण-दोष से जहाँ गुण-दोष न हो--

बिगड़ी बात बने नहीं, करिए कोटि उपाय;
फटे दूध से कहाँ कब, कोई मक्खन पाय।

अनुज्ञा

अत्यन्त गुण की लालसा से दोष वाली वस्तु की भी चाह की जाए--

कार्य बड़ा बढ़-ब्रढ़ करे, सफल बने उद्योग;
टाटा, बाटा ने किए, जैसे सिद्ध प्रयोग।
टाटा ने पूरा किया, लोहे से निज इष्ट;
कर जूतों के कार्य को, बाटा बना वरिष्ट।

लेश

जिस छंद में गुण को दोष और दोष को गुण माना जाए—

धन के पीछे ही लगे, चिंता, चोर, चबार;
निर्धन सोते शान्ति से, प्रमुदित पाँव पसार।

मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत पर से दूसरा सूचित अर्थ निकले--

खैर, खून, खाँसी, खुशी, खटमल, खटिक, खँगार;
दाबे, दब जाते क्षणिक, करते फिर-फिर बार।

कहे जाने वाले प्रकृत अर्थों का जब क्रमानुसार वर्णन हो—

पावस-रस, घन बरस कर, सरसाओ सब ओर;
हरौ ताप, दे फूल-फल, करौ विश्व सरबोर।

तद्गुण

जब अपने गुण का परित्याग करके दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण किया जाता प्रतीत हो—

स्वाँति-बुन्द, सुख-प्रद सरस, चातक-प्राण-स्वरूप;
अहि-मुख पड़ अमृत वही, बन जाता विष-रूप।

पूर्वरूप

जहाँ वस्तु की दूसरी स्थिति होकर फिर पहली स्थिति हो जाय—

कंस-क्रूरता काट कर, व्रज-धन बन व्रजेश;
फिर बिपदा-घन घिर घिरे, गए कृष्ण परदेश।

अतद्गुण

अपने पास वाली वस्तु के रूप, रस, गंधादि गुण का जहाँ ग्रहण न हो।

किए कुसंगति का सुलभ, हो सकता शुभ इष्ट;
नीम सींच कर कहाँ कब, मिल पाता फल-मिष्ट।

अनुगुण

जहाँ पर संगति के कारण स्वाभाविक गुण का अधिक विकास हो—

विद्या से बनता मनुज, निपुण, नम्र-नवनीत;
जन-जीवन जिससे बने, परिमल परम पुनीत।

मीलित

किसी बलवान धर्मवाली वस्तु में वैसे ही रूप वाली वस्तु सादृश्य कारण छिप जाए—

संगति शुभ संयोग से, कठिन कार्य हों पूर्ण;
बिबिध वस्तु कुट-पिट बनें, जैसे औषधि-चूर्ण।

उन्मीलित

कोई वस्तु सादृश्य से भेद न होने पर किसी हेतु से जानी जाए—

गात - गुराई में दिपत, कनकाभरण - अनूप;
प्रकट होय तन से विलग, खनके, परसे रूप।

सामान्य

पृथक रूपों का सादृश्य से जब भेद न जाना जाए।

छाए घिर-घिर घन घने, पावस-निशि-विकराल;
भेद न समझें तड़ित-द्युति, या नृप-कर-करवाल।

विशेषक

भिन्न रूपों के सादृश्य मे कुछ विशेषता पाई जाए।

काक और पिक एक रँग, मिलता - जुलता रूप;
ऋतुपति में बोले खुले, उनका शुद्ध - स्वरूप।

गूढ़ोत्तर

साभिप्राय उत्तर को गूढ़ोत्तर कहते हैं—

समझाया नृप कंस को, नारद ने सब मर्म;
पुत्र - देवकी का करे, संस्थापित सद् धर्म।

चित्रोत्तर

(१) चित्रोत्तर प्रथम, जहाँ प्रश्न के पद में ही उत्तर मिले--

कसें काछनी कमर में, तप - तप तपते ताप;
कर्मठ कुशल किसान ही, भोग रहे संताप ।

(२) चित्रोत्तर द्वितीय, जहाँ अनेक प्रश्नों का एक उत्तर हो--

तिमिर तोम हर, कमल को, विकसित करता कौन;
जग - जड़ - जंगम जीव जो, सूर्य तपस्वी मौन ।

सूक्ष्म

जहाँ सकेत में ही प्रश्नोत्तर हो ।

ब्रज - बनिताओं का समझ, सुदृढ़ शुद्ध अनुराग;
ऊधौ अपने आपही, भूले अपना राग ।

पिहित

जहाँ पर छिपे हुए भेद को, छिपाने वाले पर किसी चतुराई से प्रकट कर दिया जाए--

कहा यशोदा से सखी, 'लाई कृष्ण को साथ';
साश्चर्य देखा वहाँ, पकड़े पति का हाथ ।

व्याजोक्ति

प्रकट हुए भेद को, किसी बहाने से छिपाया जाए ।

गिरा साइकिल से, उठा, धूल झाड़ असवार;
मिला मित्र, उससे कहा, "है मग गर्द - गुवार ।"

गूढ़ोक्ति

जहाँ किसी दूसरे के बहाने से दूसरे से बातें की जाएँ--

घिर घिर घन आए, गए, घेर - घेर घर - घाट;
स्वाँति - बुन्द हित हुआ जग, चातक बाराबाट।

बढ़-बढ़ कर, करले अभी, निज गुण-गरिमा गान;
काग ! समझ ले, है क्षणिक, श्राद्ध-पक्ष-सम्मान।

विवृतोक्ति

जहाँ भेद कवि के द्वारा स्पष्ट कर दिया जाए--

मिला श्रेय कब कृष्ण को, कर कुब्जा से प्यार;
राधा तज कब जग कहे, कुब्जा की जयकार।

युक्ति

जहाँ मर्म को चतुर क्रिया द्वारा छिपाया जाए या प्रकट किया जाए--

निशिदिन निधड़क तू अरी ! कृष्ण अधर-रस लेत;
बंशी ! तुझसे कहें क्या, किया कृष्ण ने हेत।

लोकोक्ति

जहाँ सामान्य कथन को प्रचलित लोकोक्ति से पुष्ट किया जाए--

मनसूबे मन में बड़े, कथनी - करनी छूँछ;
मानो गज-भर स्यार की, दस गज की है पूँछ।

छेकोक्ति

जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से हो

गाजर की दे तुला जो, चाहे वर - बैकुण्ठ;
समझ सकेगा सहज ही, उनको उनसा लण्ठ[1]।

स्वभावोक्ति

जहाँ पर किसी के स्वाभाविक गुण, व्यवहार और क्रियादि का वर्णन हो--

लंका में वानर करें, कोटि - कोटि किरदन्त;[2]
उछलें, कूदें, कूद कर, किटकिटायें निज दन्त।

भाविक

भूत और भविष्य को वर्तमान की भाँति एक ही साथ कथन करना--

परशुराम सा वर व्रती, वीर, बली, विद्वान;
हुआ, न होगा, है नहीं, देखा विश्व महान।

उदात्त

जहाँ विशेष महत्व प्रदर्शित किया जाय

(१) प्रथम उदात्त

वानर, रीछ, बलिष्ठ-दल, दलपति बिबिध वरिष्ट;
राम-सैन्य गणना कठिन, कौन करेगा कष्ट।

(२) द्वितीय उदात्त

बैर किए तेरा मिटे, रावण! नाम-निशान;
सीख मान ले मन्द मति, राम अधिक बलवान।

---

१. मूर्ख, गँवार   २. उपद्रव

अत्युक्ति

जहाँ उदारता और वीरतादि का उत्कृष्ट वर्णण हो

दिन-दिन दान दिए नृपति, गुरु-आज्ञा कर मान्य;
मणि, माणिक, मुक्तामही, गज, रथ, हय, धन-धान्य।

निरुक्ति

अपनी बुद्धि के अनुसार नामों का अन्य अर्थ किया जाए

नारि-वियोगिन हों दुःखी, दोषाकर दे नाम;
चन्द्र प्रशंसित हो नहीं, करे कलंकी-काम।

प्रतिषेध

जहाँ प्रसिद्ध निषेध अर्थ का अर्थान्तर से निषेध किया जाए :

मूर्ख सुयोधन सँभल शठ, द्यूत न यह, रण-युद्ध;
वंश-नाश कर समझता, पापी ! परम प्रबुद्ध।

विधि

जहाँ सिद्धि वस्तु का विधान किया जाए

पावस पापी पपिहरा, रट पिउ-पिउ कर घात;
प्रिय-वियोग की प्रबलता, प्रकटाता दिन-रात।

हेतु अलंकार

जहाँ कार्य के साथ कारण कथन हो वा अभेद हो :

नेह-नीर नयनन भरे, हरे हुए हृद-कुंज;
व्रज-व्रनिताओं को मिले, व्रज पति प्रतिभा-पुंज।

उर उमंग उल्लास भर, भेंटे भुज-भर भूरि;
व्रज को युग-युग तुम सुखद, कृष्ण सजीवन-मूरि।

वीप्सा लंकार

जहाँ दो-पदों का साथ-साथ वर्णन हो

ललित लताएँ लहलही, कानन-कुंज कदम्ब;
करें प्रदर्शित कृष्ण सब, तेरा ही प्रतिबिम्ब।

इति अर्थालंकार

उभयालंकार

जहाँ सम्पूर्ण अलंकारों में से कोई दो या अधिक अलंकार मिले हों, तब उभयालंकार होता है।

इसके दो प्रकार है (१) संसृष्टि और संकर

ससृष्टि—दो अलंकार मिल कर प्रथक-प्रथक प्रतीत होते हों जैसे :—

कानन-कुंज, कदम्ब-कुल, कलित-कलिन्दी कूल;
कृष्ण-कृपा-करुणा बिना, वन-वन सब दुःख-मूल।

सकर—दो अलंकार मिल कर प्रत्यक्ष न दिखलायी देते हों। यह चार प्रकार का होता है।

(१) **अंगागि भाव** : वट-बीज के न्याय से दो अलंकार मिले हों। एक गौण दूसरा प्रधान।

(२) **सम प्राधान्य** : जो सूर्य और दिन के न्याय से एक साथ प्रकट हो कर एक साथ जाने जाएँ।

(३) **विषम प्राधान्य** : दिन के पश्चात् रात और रात के पश्चात् दिन होता है, इसी प्रकार एक के पीछे दूसरे अलंकार का आभास हो।

(४) **एक वाचकानुप्रवेश** : जहाँ एक ही वाक्य या पद में दो अलंकार हों।

(१)

वन-वन बस, बासी बिबिध, वे विशाल-वन-वीर;
प्रकटाते पावन परम, ज्ञान-गम्य-गंभीर।

(२)

लक लचीली, देह-दुति, झिलमिल-झाँकी-झूल;
नारि-नयन ने, अरि सदृश, बेधी बड़ी त्रिशूल।

(३)

नेत्र-झरोखन झपक झप, झपित झप्प झपमान;
सखि ! बढ़-बढ़ बैरी बने, निश दिन नयन-निशान।

(४)

उदधि रहे, सब दुःख सहे, करे सीप-उर बास;
तब मुक्ता मणि-बंध में, पाता पूर्ण प्रकास।

नियमावली

१. इस संस्था का उद्देश्य सत्साहित्य का प्रकाशन और उसका साहित्यानुरागियों में वितरण है।

२. इस संस्था के सदस्य तीन प्रकार के होंगे :—

(१) संरक्षक, जो संस्था को १००० रुपये की सहायता दें।
(२) आजीवन, जो संस्था को १०० रुपये की सहायता दें।
(३) स्थायी, जो संस्था को सदस्य बनने की तिथि तक प्रकाशित सभी पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त १० रुपये सदस्यता शुल्क दें।

३. सभी सदस्यों को समिति के सभी प्रकाशन बिना मूल्य दिये जाएँगे।

४. संरक्षकों को अधिकार होगा कि वे किन्हीं १० संस्थाओं अथवा व्यक्तियों को समिति के प्रकाशन प्राप्त करने का अधिकारी बना दें।

५. लेखकों को समिति से उचित रायल्टी दी जाएगी। —**संयोजक**।

समिति के संरक्षक

१. राजा वृन्दावनलाल पित्ती, बेगमबाजार, हैदराबाद
२. श्री रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, ८, लाजपतकुंज, आगरा
३. श्री वृन्दावनदास, बी. ए., एल-एल. बी., प्रकाश भवन, मथुरा
४. श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल, एजुकेशनल प्रेस, आगरा
५. श्रीमती लीला गोयल, दिल्ली

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१८	राजचरण	रामचरण
५	६	वीर	बीरवर
५	१७	भव	भेव
६	५	अवास	प्रबास
६	१५	सुख-साधना	सुख-साधन
९	१८	शुद्ध	शुद्धकर
१०	१	बठक	बैठक
१०	४	स्वयम्	हुआ
१०	९	संगम	सयम
११	६	वतमान	वर्तमान
१४	३	हनुमान	हनूमान
१४	९	विशष	विशेष
१६	१	गान	ज्ञान
१६	१२	वे	से
१७	६	दे	वे
१७	१२	वे	दे
१७	१४	विवि	विविध
२१	४	क्षण	क्षय
२३	५	समझ	समझें
२३	६	दु:ख	दुख

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३	८	गुण-गुण	गुण-गण
२३	१०	नर करता फल त्याग	साधन परम प्रसिद्ध
२४	१३	प्राणी	प्राणि
३१	२	सत्यथ	सत्पथ
३१	१९	युद्ध	शुद्ध
३८	२	छम	छल
३९	१	प्रात	प्रात:
४१	३	अपरिग्रह	अपरिग्रही
४६	१७	युक्त	युत
४६	१९	चरम	परम
४९	१९	प्रभापद	प्रभाप्रद
५०	१०	अन्तरीय	अन्तरीप
५०	१८	जग	जब
५१	४	परिग्रही	अपरिग्रही
५४	५	पूर्णा	पूर्ण
५५	२	दु:ख	दुख
५५	११	रहें	सहें
५७	१	प्रशंशित	प्रशंसित
६२	५	रखें	रक्खें
६२	१६	पूर्णा	पूर्ण
६८	१४	पूर्णाचन्द्र	पूर्णचन्द्र
६८	१६	जा	जो
७०	१	प्रतिशोघ	यह बोध
७१	६	सद्युक्त	सद्युक्ति
७१	२२	आयोजन	आयोजना
७२	१२	सिख	सिक्ख

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५	१३	प्रहार	प्रसार
७८	१	का	के
७८	१५	हर	सर
८१	२	श्वेत	खेत
८४	६	बला	बली
८४	७	रत	रस
८६	१३	रखें	रक्खें
९१	१	प्रकोप	प्रलाप
९३	४	कट	कटें
९३	१७	प्रम	प्रेम
९४	५	विसासी	विलासी
९६	९	पामद	पादप
९६	१३	विशद्ध	विशुद्ध
९६	१४	समझ	समझें
९६	१९	प्रकाश	आकाश
९७	२१	वाली	वाले
९८	५	में	ने
९८	१२	भामिनी	भामिनि
९८	१३	रत्ति	रची
९८	१४	कन्त	कान्त
९८	२०	नन्चा	नचा
१०५	९	नीच	नोच
१०९	९	द्रुतिबग	द्रुतिबेग
१११	१९	वाश	बश
११२	३	विष्ण	विष्णु
११५	२	अलंकर	अलंकार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	१८	पड़	पड़े
१२४	११	बंध	बंद्य
१२७	९	सुख	मुख
१२८	८	व्यापक	व्यापत
१२९	७	भर्णे	भगें
१२९	२२	अनगोल	अनमोल
१३०	११	दुःख	दुख
१३१	२	वतान्त	वृतान्त
१४४	१२	बन	बने
१५०	१२	दुःख	दुख
१५१	७	दुःख	दुख